संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

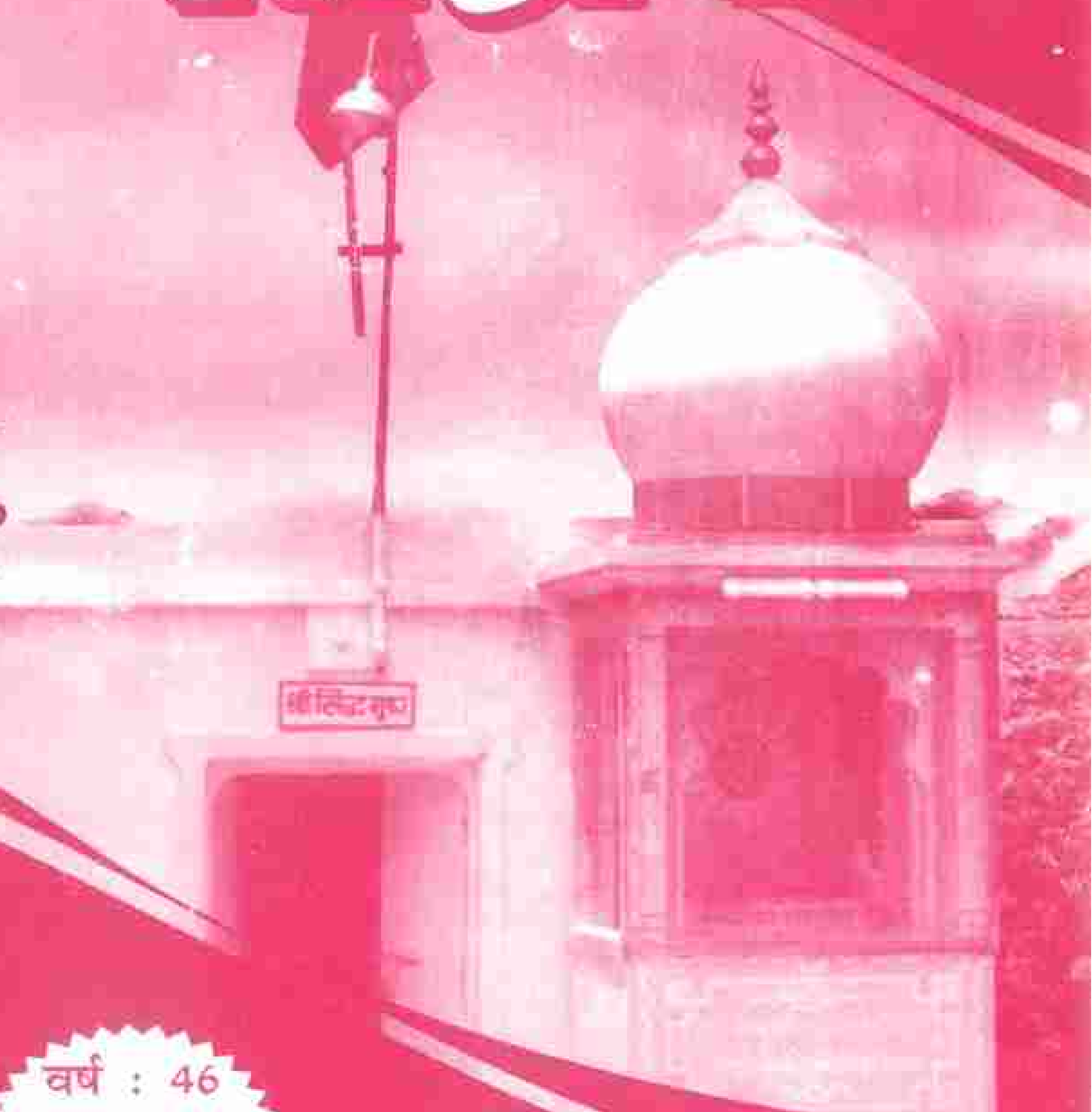

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन मवाई-282002 (आगरा) उत्त.

वर्ष : 46
अंक : 11-12
फर.-मार्च 2014

अमृत कण

चित्रकर्म यथाऽनेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्संस्कारैर्विधिपूर्वकैः।।

(महर्षि अंगिरा)

विधिपूर्वक सम्पन्न किए गए संस्कारों से संस्कृत व्यक्ति परम तत्व को या परमानन्द को प्राप्त करता है, जैसे कि अनेक रंगों से विधिपूर्वक सुसज्जित चित्र आह्लाद देने में समर्थ होता है।

● ● ●

सदा नादानुसन्धानात्संक्षीणा वासना तु या।
निरंजने विलीयते मनोवायु न संशयः।।

(नादबिन्दूपनिषद् 49–50)

अर्थात् शब्द के सतत् अभ्यास से वासना क्षीण हो जाती है और मन और प्राणवायु का निरंजन में निश्चित ही लय हो जाया करता है।

● ● ●

असतां दर्शनात् स्पर्शात् संजल्पाच्च सहासनात्।
धर्मचाराः प्रहीयन्ते सिद्धयन्ति च न मानवाः।।

(महा. वन. 1/29)

अर्थात् दुष्ट तथा दुर्व्यसनी मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं। ऐसे कुसंगी मनुष्य कभी भी अपने किसी कार्य में सफल नहीं हो सकते।।

● ● ●

नाम संकीर्तन यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

(श्रीमद्भा. 12/13/23)

जिन भगवान् का नाम–संकीर्तन सभी पापों का नाश करने वाला है और प्रणाम दुःखनाशक है, उन परनमेश्वर को मैं नमन करता हूँ।

● ● ●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 46 फरवरी–मार्च 2014 अंक : 11–12

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते।।

(मुण्डकोपनिषद् मु. 1 खं 1 / 9)

जो सर्वज्ञ तथा सबको जानने वाला है, जिसका ज्ञानमय तप है उसी परमेश्वर से यह विराट स्वरूप जगत् तथा नाम रूप और भोजन उत्पन्न होते हैं।

वे सम्पूर्ण जगत् के कारणभूत परम पुरुष परमेश्वर साधारण रूप से तथा विशेषरूप से भी सबको भलीभाँति जानते हैं, उन पर ब्रह्म का एकमात्र ज्ञान ही तप है। उन्हें साधारण मनुष्यों की भाँति जगत् की उत्पत्ति के लिए कष्ट सहन रूप तप नहीं करना पड़ता। उन सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वर के संकल्पमात्र से ही यह प्रत्यक्ष दीखने वाला विराट् स्वरूप जगत् (जिसे अपर ब्रह्म कहते हैं) अपने आप प्रकट हो जाता है और समस्त प्राणियों तथा लोकों के नाम, रूप और आहार आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	श्री सद्गुरु में अनन्य निष्ठा ही सिद्धयोग है – डॉ. विजय सिंह	10
4.	बाबा सीतारामदास ऑकारनाथ – पं. गोपीनाथ कविराज	14
5.	मानवता के लिए सर्व रोगघ्न औषधि : योग – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	17
6.	गुरुभक्ति : कष्ट निवारण – कुँवर ए.के. सिंह	18
7.	सारे जन्म देख लेते प्रभु – विजय शर्मा	21
8.	आध्यात्मिक प्रगति के तीन मार्ग – प्रो. ऋषिराम शर्मा	22
9.	योग–आसन – गोरक्षासन	28
10.	परमधर्म : योग – अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी	29
11.	गंगा स्नान की महिमा....	33
12.	तेरे दर का भिखारी – जगदीश राए बंसल	34

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 160.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• *विशेष लेख*

योगियों का सिद्ध रस

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग–साधना का उद्देश्य होता है आत्म तत्व को जानकर ब्रह्म–तत्व पा लेना। इसी ब्रह्म–तत्व को शुद्ध परमात्म–तत्व भी कहा गया है। महर्षि पतंजलि ने इसी परमात्म–तत्व को 'पुरुष विशेष ईश्वरः' कहकर इंगित किया है। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि क्लेश, कर्म, विपाक–आशय से जिसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, वही पुरुष ईश्वर अथवा परमात्म–तत्व कहा जाता है। क्लेश, कर्म, विपाक–आशय से तो जीवात्मा का चिरकालिक सम्बन्ध चला आ रहा है – परमात्म–तत्व का इनसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा न कभी आगे रहना सम्भव है। समाधि पाद के 25वें सूत्र में इस पुरुष विशेष की एक और परिभाषा करते हुए सूत्रकार ने कहा है –

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

अर्थात् उस ईश्वर–पुरुष विशेष में –सर्वज्ञता का बीज यानी ज्ञान निरतिशय है। उससे बढ़कर अथवा उसके समान सर्वज्ञता और किसी में भी नहीं है इसीलिए उसे अद्वितीय और अनुपम भी कहा गया है। श्रुति में भी

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्ता। य एतदू विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

अर्थात् मन से बारम्बार चिन्तन करके ध्यान में लाया हुआ वह परम पुरुष परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने में आता है। जो इसको जानते हैं अमृत स्वरूप हो जाते हैं, यानी वे परमानन्द रूपी रस का पान करके कृतार्थ हो जाते हैं। उन्हें फिर जन्म–मरण के पाशों में आना नहीं पड़ता। लेकिन यह स्थिति आती तब है जब साधक की साधना सतत् और निरन्तर गतिशील रहकर अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाती है। योगदर्शन के समाधि पाद के सूत्र 14 – 'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारा–सेवितो दृढ़भूमिः' की स्थिति को पा लेता है। सूत्र के अनुसार आदर श्रद्धा और प्रेम के साथ बिना किसी व्यवधान और अवरोध के साधक जब साधना की यह दृढ़भूमि प्राप्तकर लेता है तब ही वह परम–तत्त्व परमात्मा रूपी आनन्द रस का पान करने का सुअवसर पा सकता है। उपासना–योग, भक्ति योग अथवा ईश्वर प्रणिधान द्वारा भी साधक तब तक अपने लक्ष्य को

नहीं प्राप्त कर पाता जब तक कि वह साधना की दृढ़भूमि पर अपने पैर नहीं जमा लेता। साधक साधना की दृढ़ भूमि पर पहुँच गया है इसका परिचय उसके आचरण और व्यवहार से हर समय मिलता रहता है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीमद्‌भगवद् गीता में आनन्द रूपी अमृत का पान कर सकने वाले भक्ति–योग के साधक के लक्षण बताते हुए कहा है –

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येत केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्ति– मान्मे प्रियो नरः।।
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।

अर्थात् जो शत्रु–मित्र में और मान अपमान में, सत्कार और तिरस्कार में समान रहता है एव शीत उष्ण और सुख–दुःख में भी समभाव वाला है तथा सर्वत्र आसक्ति से रहित हो चुका है। निन्दा और स्तुति जिसके लिए बराबर हो गई है जो मुनि मननशील संयतवाक् है, अर्थात् वाणी जिसके वश में है, जो सब प्रकार से सन्तुष्ट है, समस्त तृष्णा से जो निवृत्त हुआ है जो स्थान रहित, अर्थात् किसी स्थान से जिसे मोह नहीं है तथा जो स्थिर बुद्धि है और परमार्थ में जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है ऐसा उपासक साधक मुझे प्रिय है। क्योंकि ऐसे भक्त या साधक ही धर्मामृत पान के अधिकारी होते हैं।

जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कुछ इसी प्रकार की बात पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक संख्या 5 में ज्ञाननिष्ठ साधक के सम्बन्ध में कही है। वे कहते हैं –

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदु खसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

यानी जो मान–मोह से मुक्त है, जिनका अभिमान और अज्ञान नष्ट हो चुका है जो मान मोह से रहित हैं, जिन्होंने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है। जो नित्य अध्यात्मिक विचार में रत रहते हैं, जो कामनाओं से रहित हैं जो द्वन्दों से छूटे हुए हैं, ऐसे साधक उस परम–तत्व के परमानन्द रूप पद को प्राप्त कर पाने के अधिकारी होते हैं।

यही वह तेजोमय परम पद है जहां जाकर साधक को फिर जन्म मरण के बन्धन में नहीं लौटना पड़ता। यही परम–तत्व अव्यय और अक्षर कहलाता है। वेदों में इसी तत्व को आपः ज्योतिः रसः और अमृत कहकर इंगित किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि कहते

है – 'रसो वै स:' अर्थात् वह परम तत्व रस रूप है 'रस' शब्द का अर्थ है आनन्द। यः रसयति आनन्दयति स रसः। जो आनंदित करता है उसे रस कहते हैं। जगत में जो कुछ रस है वह परमात्मा अथवा ब्रह्म का ही रस है इसीलिए उसे रसघन या रसों का महासमुद्र भी कहा गया है। योगीजन समाधि में इसी रस अथवा आनन्द का पान किया करते हैं – यह ब्रह्मानन्द अथवा ब्रह्म रस ही उनका सिद्ध रस अथवा अमृत होता है। इस सिद्ध–रस पान से परितुष्ट होकर ही वे सिद्धयोगी की पदवी पा जाया करते हैं। वसुन्धरा को भी रस से परिपूर्ण होने के कारण रसा कहकर पुकारा गया है, जो वनस्पति आदि के माध्यम से समस्त प्राणि–जगत को सरस बनाती है। संसार में जितनी भी सरसता दिखलाई पड़ती है वह सबका उद्गम वह रसघन परमब्रह्म परमात्मा ही है। पर, इस तथ्य को कितने जन जान पाते हैं कि यदि जीवन को सरस और सुखद बनाना है तो हमें स्वयं इसी ब्रह्मरस अथवा सिद्धरस से अपने को परितृप्त करना होगा। बिना अपनी तृप्ति अथवा तुष्टि किये तुम औरों को परितृप्त कैसे कर सकोगे। प्रभु का आदेश है कि तुम जीभरकर इस आनन्द रूपी महारस का स्वयं पान करके औरों को भी इसे पान करने के लिए प्रेरित करो। तुम्हारे मानवीय कर्तव्यों की श्रृंखला की यह भी एक कड़ी है कि तुम देवासुर–संग्राम की तरह इस रस–सागर में से सर–कलश को भरकर केवल अपने लिए ही ले जाने की कोशिश मत करो किन्तु लोकहित के लिए इसे सभी दिशाओं में प्रवाहित कर दो। सिद्धयोगियों की ऐसी ही परम्परा होती है। अपने लिए नहीं किन्तु लोक–कल्याण के लिए ही वे नर देह धारण करके पृथ्वीतल पर आते और अपने सहज धर्म के रूप में कर्तव्य पालन करके पुनः अपने निज लोक को लौट जाया करते हैं। हम सबके परम पूज्य योगयोगेश्वर महाप्रभुजी ऐसी ही दिव्यात्माओं से हैं, जिनके सम्बन्ध में योगिराज श्रीकृष्णचन्द के शब्दों में कहा जा सकता है –

ने मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमंवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।

अर्थात् हे पार्थ तीनों लोकों में मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं है क्योंकि मुझे कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी है तो भी मैं कर्मो में वर्तता हूँ।

सिद्धयोगियों का लक्षण भी यही है कि वे पीड़ित और दुःखी जनों की कल्याण कामना के लिए कालक्रमानुसार इस भूतल पर विमुक्त और विदेह होते हुए भी नर देह धारण करके अवतरित होते रहते हैं। हमारे देश में महान अवतारों के अवतरण का उद्देश्य भी तो यही था। महान आत्माओं, सिद्धयोगियों अथवा श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण ही तो लोक के लिए आदर्श बना करता है। महाप्रभुजी का करुणा से ओत–प्रोत लोक जीवन योग मार्ग के सभी साधकों

के लिए आदर्श और अनुकरणीय जीवन के रूप में हम सबके सामने है। उनकी शिक्षा और आदर्शों को आत्म-सात करके ही सतत् योग साधना, त्याग एवं वैराग्य की भावना को संबल बनाकर ही तुम इस भूतल के सार उस सिद्ध रस के पान करने के अधिकारी बन सकते हो जिसका अपर नाम आनंद और अमृत है। बिना इस आनन्द के न कोई आनन्दित रह सकता है न औरो को आनंदित करके अपने मानवोचित कर्तव्य का पालन कर सकता है। अतः भगवान कृष्ण के इन शब्दों को सदा याद रखो– **रसोहमप्सु कौन्तेय, प्रमास्मि शशि सूर्ययो।**

परमप्रभु रस रूप है ज्योतियों की ज्योति है, अतः तुम इसी रस और ज्योति से अपने आत्मतत्व को परितृप्त और जाग्रत एवं जगमग करने की सहज चेष्टा करते रहो – तुम्हारी साधना का यही लक्ष्य होना चाहिए।

● ● ●

दर्शनात्स्पर्शनान्नामकीर्तनाद्धारणादपि।
प्रदानात्पापसंहर्त्री नराणां तुलसी सदा।।

दर्शन, स्पर्श, नाम-संकीर्तन, धारण तथा प्रभुसमर्पण से तुलसी जी सदा ही लोगों के लिए पापों का विनाश करने वाली हैं।

सिद्धयोग - हमारी प्यारी पत्रिका

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

प्रिय पाठकगण / गुरु भाई-बहिन,

जय गुरुदेव की !

क्षण-क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग' अपनी आयु के 46 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 47वें वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्त्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ-साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र-पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धांतिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है – ***आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।*** अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्त्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में

ध्यान–योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है; किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन है– **'संशयात्मा विनश्यति'** अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि – **'स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्'** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेवजी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में, मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में

गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क रु. 150/- हो गया है तथा आजीवन शुल्क रु. 900/- हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सवाँई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभु जी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभु जी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि-कोटि नमन है।

श्री रामनवमी योग महोत्सव दिनांक 6, 7 व 8 अप्रैल 2014 को मनाया जाना निश्चित हो चुका है।

आपका

डॉ. दासलाल योगाचार्य

● ● ●

गङ्गा काशी गयातीर्थं प्रयागश्च महामते।
कुरुक्षेत्रं च यमुना तथैव च सरस्वती।।
गोदावरी नर्मदा च तथान्यत्तीर्थमुत्तमम्।
सदा सन्निहितं ज्ञेयं बिल्वमूलेषु नारद।।

महामति नारदजी! गङ्गा, काशी, गयातीर्थ, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा तथा दूसरे भी श्रेष्ठ तीर्थ बिल्ववृक्ष के मूल में सदा ही प्रतिष्ठित रहते हैं – ऐसा समझना चाहिए।

श्री सद्गुरु में अनन्य निष्ठा ही सिद्धयोग है

– डॉ. विजय सिंह

''तं दुर्दशं गूढ़मनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्'', यह उपनिषद् का कथन है। अत्यन्त कड़े परिश्रम से प्राप्त होता है, वह परम सत्य आत्मा क्योंकि अति दुर्गम तथा माया रूपी आवरण से ढका हुआ वह हृदय देश की एक गुफा में अवस्थित है। यह संकेत साधक खोजी हेतु दिया गया। चक्रों की साधना हो, ज्ञान की साधना हो, भक्ति की साधना हो, सबका परमोद्देश्य गहन दहर (हृदयाकाश) गुफा में जो माया के आवरण (सत, रज, तम) और प्रकृति की त्रिगुणात्मिका से उत्पन्न विकृति, अहंकार, पंच ज्ञानेन्द्री, मन, पंचकर्मेन्दीय, बुद्धि चित्त तथा पंच महाभूत, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश एवं इनकी पंच तन्मात्रायें तथा उनके देव द्वारा तिरोहित है उसकी ही खोज करना है।

यह आत्मानुभव काल–कर्म सापेक्ष कठिन है तथा कृपा सापेक्ष सरलता से प्राप्त होता देखा गया है। इस कठिन कलिकाल में जब सत्यानुसरण मनुष्य में अल्पतम होता जा रहा है तब कृपा एवं निष्ठा ही उस गहनतम माया आवरण का भेदन करा करके सत्य का साक्षात्कार करा देने में सक्षम् है। हठयोग प्रदीपिका में वर्णन है –

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते, ग्रन्थयोऽपि च।।

जब शिष्य साधक की सामर्थ्य काम नहीं करती तो सद्गुरु कृपा शक्ति उसके साधन के अवरोध को समाप्त कर उसे उच्च चक्रों में पहुँचा देती है। साधना मार्ग में आने वाली ग्रंथियाँ जो हैं उसे भी सद्गुरु कृपा से ही निर्ग्रन्थ किया जाता है।

साधना का एक पक्ष यह है कि स्वात्मानुभूति के पश्चात् हम सम्पूर्ण चराचर में उस आत्म–तत्व, सद्गुरु तत्व अथवा ईश्वर का दर्शन करें तब सहज अवस्था है। निम्न उपनिषदीय सूत्र में यही बात उजागर किया गया है।

ईशावास्यामिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

तात्पर्य यह है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि में (अच्छे, बुरे, सुन्दर–असुन्दर, सुखात्मक–दुखात्मक आदि द्वन्दों) ईश्वर ही व्याप्त है। हमें सभी जगह उस परमात्मा का ही बोध होने लगे तब समझना चाहिए कि साधना परिपूर्णता को प्राप्त हुआ।

परमात्मा सभी के अन्तःकरणों का साक्षी है। उनसे कुछ भी छिपा नहीं है कि कौन मनुष्य कामना युक्त चित्त से साधन कर्म कर रहा है और कौन निष्काम भाव से। देखा गया है कि आत्म–महिमा के प्रसार लोभ में उच्च कोटि के विद्वान भी फँसे हुए हैं। सद्गुरु कृपा बिना ऐसे

सूक्ष्म कामनाओं का अन्त स्वयं से सम्भव नहीं होता। कीर्ति लोभ को रोक लेना सामान्य जनों के लिए तो संभव ही नहीं है।

श्री सद्‌गुरु में अनन्य निष्ठा होने पर भी सूक्ष्म माया आवरणों का अतिक्रमण साधक कर पाता है "मम माया दुरत्या"। श्रद्धा पुण्यों का प्रतिफल है। पाप का प्रतिफल अश्रद्धा है। देह–धन आदि में चित्त की आसक्ति, चित्त को पापाछन्न बनाता रहता है। ऐसे लोगों में तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान में श्रद्धा कहाँ से होगी? जब चित्त पर पापों का ढेर लगा हो तो पुण्य क्रियाओं एवं सद्‌गुरु द्वारा निर्देशित साधन कर्मों में आस्तिक्य – बुद्धि उत्पन्न ही नहीं होती। प्रतिदिन अनेकानेक प्राणियों को मरते हुए देखकर भी हम अपने मृत्यु का भान नहीं करते। मृत्यु अवश्यंभावी है। अतः श्री सद्‌गुरु चरण कमलों में विश्वास से हमारे चित्त की दुर्बलता नष्ट होकर हमें प्रबलता प्रदान करती है। यही विश्वास साधनानुभूति से दृढ़ता को प्राप्त हो असमर्थ को भी समर्थ बनाती है।

संस्कार प्रबलता से सुगम एवं विषम परिस्थितियाँ साधना काल में आती रहती हैं। विषम परिस्थितियों में सद्‌गुरु निष्ठा ढ़ाल का काम करती है। कठिन कर्म विपाक के समय यदि साधक सद्‌गुरु का चिंतन जितनी दृढ़ता, शुद्धता, अनन्यता के साथ स्मरण और प्रार्थना करता है तब उन क्लेशों का निदान श्री प्रभुजी तत्काल करते हैं। एक बात और है, यदि सामान्य काल में भी हम सदैव उसी अनन्यता से स्मरण करें तो योग–युक्त होने में देरी क्यों होगी? स्वयं जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण ने कहा है –

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।। 27।। अ. 8

अर्थः दृढ़ निष्ठा से सदैव स्मरण करने वाला योग युक्त कहलाता है। वह मृत्यु रूपी संसार से प्रयाण से मोहग्रस्त नहीं होता। क्योंकि मृत्यु के समय वही संस्कार उद्‌बुद्ध होते हैं, जिनका अभ्यास जीवन भर किया गया होता है। अतः सर्वकालिक स्मरण ही सहज साधना है। श्री सद्‌गुरु भगवान अपने प्रवचनों में सबको यह स्मरण कराते रहे हैं कि उठते–बैठते, चलते–फिरते अपने गुरु मंत्र का जाप (स्मरण) करते रहो। इससे सर्व क्लेशों का शमन होगा।

गीतोक्त श्लोक को पढ़ें –

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयः।। 7।। अ. 8

तात्पर्य यह कि हर समय जो स्मरण में चित्त को लगाये रहता है और सांसारिक कार्य (यहाँ तक कि युद्ध) करते हुए भी मुझे स्मरण करता रहता है और मुझमें अपने मन, बुद्धि को अर्पित किये हुए है वह निश्चित रूप से मुझे प्राप्त करेगा।

सिद्धयोग के साधना अनुष्ठान में लगे हुए साधकों को कभी ऐसा होता है कि पहले की तरह मनः शांति, अनुभव नहीं होते तब वे अत्यन्त निराश हो जाते हैं। साधक का चित्त तथा

इन्द्रियाँ पूर्वार्जित उच्च एवं शुद्ध ध्यान पद से गिर कर मलिन वासनाओं एवं पाप कर्मों में फँस सकती है। ऐसे में निराश होना उचित नहीं है। अपने स्मरण को सयाश प्रकट करने की चेष्ठा में रत होना चाहिए। आशा रखनी चाहिए कि श्री सद्‌गुरु अपनी करुणा कृपा से पुनः उत्कर्ष प्रदान करायेंगे। इस प्रकार बिना निराश हुए जो साधना क्रम जारी रखते हैं वे पाते हैं कि यह पतन की अवस्था आगे चलकर उत्कर्ष की शक्ति को बढ़ा देता है। अतः लौकिक या आध्यात्मिक परिश्रमों में पतन से हताशा के भाव को नहीं प्राप्त होना चाहिए अपितु श्री सद्‌गुरु कृपा शक्ति पर दृढ़ विश्वास रखते हुए समझना चाहिए कि जैसे सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख का क्रम चलता रहता है, उसी प्रकार से साधना में भी निग्रह–अनुग्रह का क्रम संस्कारों के कारण उत्पन्न होता रहता है। ऐसी अवस्था में ही साधक के चित्त की अन्योनाश्रितता की पहचान होती है।

वर्तमान काल में विज्ञान की उपलब्धियों के प्रभाव में आकर नये–नये प्रयोग करने की चेष्ठा जो चैनलों के माध्यम से सिखाया जाता रहता है साधकों को सम्भालने का कार्य कम भटकाव ही ज्यादा दे रहा है। श्री सद्‌गुरु उपदेश से प्रबोधित चित्त को अनुशासन में रखकर उनके बताये मार्ग का ही अवलम्बन फलप्रदायी होता है। सिद्धयोग सद्‌गुरु चरणाश्रित होने पर ही पूर्णता दिलाता है। आज कलिमल ग्रसित जीव स्वतंत्र चिन्तन से निरूपाधिक निर्विकल्प को उपनिषद कालीन ब्रह्मचारियों की तरह प्राप्त नहीं कर सकता। अतः स्थूल (आरती–पूजन, स्वाध्याय भजन, पाठ आदि) तथा सूक्ष्म (प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) चक्र निवेशित देव का मानस पूजन करने से धीरे–धीरे हमारा चित्त शुद्ध एवं एकाग्र होगा। अतः प्रारम्भिक अवस्था में श्री सद्‌गुरु कृपा कथामृत, अपने आश्रम से सम्बन्धित परम उपयोगी साहित्य को पढ़ना जिज्ञासुओं के लिए दृढ़ निष्ठा प्राप्त करने के लिए उपयोगी होता है। जैसे–जैसे निष्ठा परिपक्व होती जायेगी श्री प्रभुजी की कृपा शक्ति का स्वय के मन में प्रकाश होता जायेगा। परम सद्‌गुरु दिव्य हैं वो कृपाघन का जो चिंतन–मनन करेगा उसे भला दिव्यता क्यों नहीं प्राप्त होगी।

श्री सद्‌गुरु समर्थ के चरण कमलों में विश्वास दुर्बल को प्रबल बना देता है। वही विश्वास अधैर्य को परम धीर बना देता है। यही दृढ़ विश्वास युक्त किया गया साधना असमर्थ जीव को समर्थ योगी बना देता है।

जिसको वरण करने से सर्वस्व का वरण कर लिया। जिसको जानने से सब जान लिया। जिसको पाने से सब कुछ प्राप्त कर लिया। यब बोध ही ''सत्यं परम धीमही'' मूल वस्तु ब्रह्म है। सद्‌गुरु का स्वरूप क्या है? ''ब्रह्मानन्दं परम सुखदम् केवलं ज्ञान मुर्तिः'' अतः साधना की पूर्णता सद्‌गुरु बोध में निहित है। महात्मा कबीर की साखी पढ़ें –

गुरु मिला तब जानिये, जब मिटे मोह सन्ताप।
हर्ष शोक व्यापे नहीं, तब गुरु आप ही आप।।

जैसी प्रीति कुटुम्ब से तैसे गुरु से होय।

चले जाउ बैकुण्ठ को बाँह न पकरे कोय।।

संसार के चक्कर में पड़े हुए हम सभी सुबह–सायं सद्‌गुरु आरती – प्रार्थना गाते हुए कहते हैं –

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।

त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

● ● ●

आवश्यक सूचना

श्री सिद्धगुफा के सुचारु संचालन के लिए अर्थ व्यवस्था हेतु तीन व्यक्तियों के नाम से संयुक्त खाता कैनरा बैंक एत्मादपुर में खुला हुआ है। इच्छुक गुरु भक्त आश्रम की भेंट हेतु जो सेवा भेजना चाहते हैं रामनवमी व निर्माण के लिए वे बैंक में जमा कर सकते हैं। विवरण निम्न है –

खाता धारक का नाम – *दासलाल शर्मा व अन्य दो*

बैंक खाता का विवरण – IFSC CNRB 0000371

Ac/ No. 0371101026843

कैनरा बैंक, एत्मादपुर (आगरा)

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ

(साधु दर्शन सत्प्रसंग)

— पं. गोपीनाथ कविराज

आपका जन्म पश्चिमी बंगाल स्थित हुगली जिला के डुमरदह नामक गाँव में, एक निष्ठावान ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता थे – श्री प्राणहरि चट्टोपाध्याय और माता का नाम था – श्रीमती माल्यवती देवी। घर में कुल देवता श्री ब्रजेन्द्रनाथ और राधारानी प्रतिष्ठित थे, इसीलिए मकान का नाम था – 'श्री ब्रजनाथ निकेतन'।

इस परिवार का द्वितीय पुत्र श्री प्रबोधचन्द्र चट्टोपाध्याय थे जो आगे चलकर बाबा सीताराम दास ओंकारनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए। 6 फाल्गुन, कृष्ण पंचमी तिथि, बुधवार, सन् 1892 ई., सबेरे 8 बजकर 1 मिनट पर, अपने नाना के घर, जिला हुगली, ग्राम केवटा में गंगा के किनारे आपका जन्म हुआ था।

सन् 1900 ई. में अपने मामा के घर रहते हुए आप प्रसन्न गुरु की पाठशाला में भर्ती हुए। इसके बाद संस्कृत अध्ययन करने के लिए, दिगसई गाँव में श्री दाशरथी स्मृति भूषण महाशय की चतुष्पाठी में आये। यहीं आपकी शिक्षा और दीक्षा दोनों हुई थी। गुरुदेव श्री दाशरथी स्मृति भूषण ने नामकरण किया – 'सीतारामदास।' गुरुदेव के इच्छानुसार गुरुदेव की आत्मीया सिद्धेश्वरी देवी के सहित सन् 1917 के अगहन मास में विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय छात्र जीवन समाप्त नहीं हुआ था।

आगे चलकर आप बंगाल के उच्चकोटि के महात्मा बने। आपके नाम से मैं एक अरसे से परिचित था। उन्हीं दिनों से आपके सम्प्रदाय का नाम 'जय गुरुदेव' हुआ था। लेकिन मेरे साथ आपका परिचय और दर्शन सन् 1948 ई. में पुरी रहते हुआ था। उन दिनों आप मौन थे, पर आपके शिष्य चारों ओर से आपको घेर कर हरि–नाम कीर्तन करते रहे। आप जहाँ कहीं जाते, वहीं कीर्तन–मण्डली के लोग साथ जाते थे।

बचपन में ही आपको भगवत्–कृपा प्राप्त हो गयी थी। सन् 1917 के दिनों में आपने प्रत्यक्ष रूप से शिव का दर्शन किया और उनसे दीक्षा ली। सन् 1930 में पत्नी के देहान्त हो जाने के बाद आप एकनिष्ठ भाव से आराधना में सचेष्ट हो गये। इन्हीं दिनों स्वप्न में ब्रह्मदीक्षा प्राप्त हुई थी। इस घटना के बाद आप दो वर्ष तक मौनव्रत पालन करते रहे तथा साक्षात् जगन्नाथ देव से आदेश प्राप्त कर तारक–ब्रह्म नाम के प्रचार में लग गये।

आप मुझे अच्छी तरह से जानते थे, बल्कि अपने यहाँ से प्रकाशित 'देवयान' नामक पत्रिका बराबर भेजा करते थे। जब आप ओंकारेश्वर में मौन धारण किये हुए थे तब आपसे मेरी

घनिष्ठता हुई थी। इसके बाद आपके कुछ भक्तों ने सन् 1956 में मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनकी पुस्तक 'नादलीलामृत' की भूमिका लिख दूँ। आपके आदेशानुसार मैंने भूमिका लिख दी। उसे पढ़कर आपने मुझे एक बड़ा पत्र प्रशंसा के रूप में भेजा था। इस पत्र में आपने अपने आध्यात्मिक जीवन के बारे में उल्लेख किया था।

उन्होंने लिखा था -- जब वे चुचड़ा स्थित टोल में पढ़ते थे तब शिव तथा जगदम्बा का साक्षात दर्शन उन्हें हुआ था जिसका कितना प्रभाव उनके जीवन में पड़ा था इन बातों का उन्होंने उल्लेख किया था। पत्र के अन्त में कुछ प्रश्न भेजने का उन्होंने अनुरोध किया था। बाद में मैंने प्रत्युत्तर दिया था। उन बातों की चर्चा मैं यहां नहीं करना चाहता।

बाबाजी के अनुरोध पर मेरे द्वारा सम्पादित ग्रन्थ श्री विशुद्धानन्द प्रसंग पाँचों खण्ड तथा विशुद्ध वाणी मैंने उन्हें भेजा था। इन ग्रन्थों को पढ़ने के पश्चात् वे मुझसे मिलने के लिए काशी आये थे। इसके बाद जब कभी वे काशी आते तब मैं उनसे मिलने के लिए अवश्य जाता। बाद में जब वे काशी आते तब सर्वप्रथम श्री विशुद्धानन्द कानन जाकर रीनवमूर्त्ति माँ का आसन दर्शन करते, फिर वहाँ से मेरे यहाँ आते तब बंगाली टोला स्थित अपने आश्रम में जाते थे। उनके साथ उनके भक्त कीर्तन करते हुए चलते थे।

आपने ओंकार-साधना पूर्णरूप से किया था। आप वैष्णव-सम्प्रदाय के थे, फिर भी ज्ञानमार्ग और योगमार्ग में आपकी दक्षता थी। आचार्य रामदयाल मजुमदार को आप गुरु की तरह मानते थे। इस बारे में एक बात लिखना उचित समझता हूँ -- कलकत्ता के 'उत्सव' पत्रिका कार्यालय में, सन् 1937 के ज्येष्ठ मास में, रामदयालजी ने सीतारामदास ओंकारनाथ के वक्षस्थल में दक्षिण हस्त रखते हुए कहा था -- "तुम्हें मैं अपनी समस्त शक्ति दे रहा हूँ।"

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ इससे अभिभूत हो उठे। इसके बाद उन्होंने यह भी कहा था -- मैं मंच से उतर रहा हूँ अब तुम मंच पर विराजमान हो।"

इसी वर्ष बाबा सीताराम ओंकारनाथ ने अपना प्रथम चातुर्मास्य व्रत का उद्यापन, कलकत्ता स्थित शांखारी टोला में प्रारंभ किया था। पूरे चार माह तक वे वहाँ रहे, उन दिनों प्रति शनिवार को सत्संग में भाग लेते थे। एक दिन रामदयालजी ने बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ जी से कहा -- "मैं अब 'चण्डी' लिख नहीं पा रहा हूँ, तुम लिखो।"

इधर बाबा सीतारामजी के हाथ अचल हो गये थे। लिखने लायक शक्ति उनमें नहीं थी। रामदयाल जी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा -- "तुम जरूर लिख लोगे।'

बाबा सीताराम दास ओंकारनाथ जी ने इस आशीर्वाद को शिरोधार्य कर लिखना प्रारम्भ किया और अपने कार्य में सफल रहे। पाण्डुलिपि के कुछ अंशों को पढ़कर स्वर्गीय धीरेन्द्रनाथ ने उसे प्रकाशित करने की आज्ञा माँगी तो उन्होंने कहा -- ' अभी नहीं। पुस्तक पूरी हो जाय।'

आपके जीवन पर महात्मा शिव-शंकर (योगत्रयानन्दजी) का प्रभाव पड़ा था। आप वर्णाश्रम धर्म के सेवक थे। धर्म-प्रचार के लिए विभिन्न भाषाओं में शास्त्रीय ग्रन्थ और पत्रिका प्रकाशित करवा चुके हैं। बंगला में देवयान, पथेर आलो, अंग्रेजी में मदर, संस्कृत में प्रणव, पारिजातम आदि पत्र पत्रिकाएँ हैं। हिन्दी, उड़िया और दक्षिण भारत की विभिन्न भाषाओं की पत्रिकाएँ हैं।

उनकी तीव्र तपस्या, पूर्ण गुरुभक्ति तथा अनुभव ऐसा है कि वे निर्मल समाधि में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। मेरे प्रति उनका अकृत्रिम स्नेह रहा है, जिसकी पूर्ति मैं नहीं कर सकता।

●●●

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	–	श्री सिद्धगुफा, संवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधि क्रम	–	मासिक
3. मुद्रक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम	–	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी	–	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

30 जनवरी, 2014

दासलाल शर्मा

कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई (एत्मादपुर), आगरा

मानवता के लिए सर्व रोगघ्न औषधि : योग

अनुवादक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, पूर्व विभागाध्यक्ष–मनोविज्ञान

लेखक : डॉ. रमन नायर – मानविकी संकायाध्यक्ष कोचीन वि.वि. – कोचीन (केरल प्रान्त)

(पिछले अंक से आगे ....)

पिछले अंक में राजयोग की चर्चा के उपरान्त अब हठयोग की महत्ता की चर्चा करते हैं। राजयोगी आसनो को साधना के लिए केवल सुखकारक दीर्घकालिक मुद्रा मानते हैं, परन्तु बाद में हठयोगियों ने आसनों की संख्या बढ़ा कर इसका उपयोग शरीर के विभिन्न अंगों और मांसपेशियों को सुदृढ़ करने के लिए भी प्रारम्भ कर दिया। आसनों को सिद्ध करने के लिए उन पर घण्टों बैठने और अभ्यास की आवश्यकता होती है। परन्तु आज के व्यस्त और तनाव भरे युग में मनुष्य को इनकी सहायता रोग मुक्ति के लिए रह गई है। हठयोग के छः मार्ग / आयाम हैं – आसन, मुद्रा, प्राणायाम, नेती, न्यौली और बस्ती। ये यौगिक प्रक्रियायें शारीरिक और मानसिक असंतुलन दूर करने में सहायक होती हैं जिससे आगे की साधना का मार्ग प्रशस्त होता है। इसीलिए हठयोग रोगमुक्ति, शारीरिक शुद्धता और बलिष्ठ शरीर के लिए आवश्यक है साथ ही यह एक निर्मल और उच्च शक्ति युक्त मनोनिर्माण में भी सहायक है। जहाँ आसनों से मांसपेशियां बलवती होती हैं वहीं मुद्राओं से रसविहीन ग्रन्थियों का प्रवाह बढ़ता है। सभी आसन और मुद्रायें एक साथ करना न सम्भव है और न उपयोगी। अतः तन मन के स्वास्थ्य के लिए कुछ चयनित आसन एवं मुद्रायें ही पर्याप्त हैं। यहाँ आयु वर्ग के हिसाब से ही आसनों का चयन करणीय है। श्री प्रभुजी ने इसी निमित्त जीवन तत्व साधन का आविष्कार किया था।

अब बात प्राणायाम की है। हम सभी प्राण तत्व की महत्ता से परिचित हैं। सरल भाषा में प्राणायाम श्वास–प्रश्वास का नियमित रूप है। अधिकांश लोग अनियमित और गलत रीति से श्वास लेते हैं। सरल प्राणायाम आसानी से सीखे जा सकते हैं परन्तु विभिन्न मुद्राओं के लिए जटिल प्राणायाम एक अच्छे गुरु का मार्ग दर्शन चाहते हैं। सरल प्राणायाम यदि कुछ अतिरिक्त समय किये जायें तो स्वास्थ्य के साथ आयुवर्धक और मानसिक शान्ति प्रदान करते हैं। आसनों के अतिरिक्त नेति, धोती, न्यौली और बस्ती अधिक शारीरिक शुद्धता के साधन हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि सरल योग साधन प्रत्येक आयु वर्ग के लिए लाभकर हैं और युग की आवश्यकता पूर्ति हेतु यह विज्ञान जनसाधारण में ग्राह्य होता जा रहा है। इति !

● ● ●

गुरुभक्तिः कष्टनिवारण

– 'कुँवर' ए.के. सिंह, एडवोकेट, कछवा, मीरजापुर

श्रद्धा हो, शिष्यत्व हो, श्री सद्गुरुदेव भगवान का आश्रय हो तो आदि गुरु भगवान सदाशिव के मुखारबिन्द से निकली श्री गुरुगीता से असम्भव भी सम्भव बन जाते हैं। विघ्नबाधाएँ सांसारिक हों, आर्थिक हों, या आध्यात्मिक हो गुरुगीता से सभी का समाधान व निराकरण सम्भव है। भगवान भोलेनाथ सदाशिव का कथन है कि अपना कल्याण चाहने वाले साधक को श्री गुरु गीता को अपनाना चाहिए। श्री गुरुगीता में है क्या? जिसे भूतभावन भगवान शंकर जी माँ परामबा पार्वजी जी से कहते हैं –

मंत्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षर द्वयम।
स्मृतिवेदार्थवाक्येन गुरुः साक्षात्परं पदम्।।

अर्थात् 'गुरु' ये दो अक्षर अपने में महामंत्र है। यह महामंत्र सभी मंत्रों का राजा है। सभी स्मृतियों एवं वेदवाक्यों का निचोड़ यही है कि 'श्री गुरुदेव' ही स्वयं परमपद हैं।

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत परम्।
सर्वब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तरं यथा।।
गुरुः कृपाप्रसादेन आत्मारागं निरीक्षयेत्।
अनेन गुरुमार्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवत्तते।।

नित्य निराकार निर्गुण ब्रह्म का बोध केवल श्री सद्गुरु कृपा से मिलता है, जिस तरह दीप से दीप जलता है, उसी तरह सद्शिष्य के अन्तर में ब्रह्मज्ञान की ज्योति जला करती है। अतः शिष्य को चाहिए कि वह अपनी सद्गुरु कृपा की छाँव में आत्मतत्व का चिंतन करें। ऐसा करते रहने पर श्री गुरुदेव जी के द्वारा सिखाएं – दिखाएं मार्ग से स्वतः ही आत्मज्ञान हो जायेगा। शिष्य के लिए 'गुरुसेवा' ही साधना है। गुरुसेवा का अर्थ है – श्री गुरुदेव भगवान जो भी कहें, जैसा भी काम सौंपें, वैसा ही करना।

श्री गुरुगीता हमें उपदेशित करती है –

मोहनं सर्वभूतानां बंधमोक्षकरं भवेत्।
देवराजप्रियकरं सर्वलोकवशं भवेत।।
सर्वेषा स्तम्भनकरं गुणानां व विवधर्नम्।
दुष्कर्मनाशनं चैव सुकर्मसिद्धिदं भवेत्।।
असिद्धं साहायेत्कार्य नवग्रहभयावहम्।
दुःस्वप्नाभनं चैव सुस्वप्रफल दायकम्।।

अर्थात् गुरुगीता की साधना सभी प्राणियों का सम्मोहन करने वाली है। इससे सभी बन्धनों से मुक्ति मिलती है। देवराज की प्रसन्नता होती है तथा सभी देश के प्राणी वश में होते हैं। इतना ही नहीं इससे सभी शत्रुओं एवं दुर्गुणों का स्तम्भवन होता है। गुणों सद्गुणों की अभिवृद्धि होती है और दुष्कर्मों का नाश करके सत्कर्मों की सिद्धि होती है। आगे इससे असहयकार्य साहय होते हैं एवं नवग्रहों की पीड़ा दूर होती है। दु:स्वप्नों का फल नष्ट होता है। सुस्वप्नों का सुफल मिलता है। इस प्रकार भगवान आशुतोष के ये वचन संसार के असह्य कष्टों से संतप्त जनों के लिए गुरु उपदेश के तुल्य हैं। इनके पालन करने से, अनुसरण करने से मानव न केवल स्वयं विपत्तियों से छूट सकता है बल्कि पूरे मानव समाज की भी सार्थक सहायता कर सकता है।

आयुरारोग्यमैश्वर्य पुत्र पौत्रप्रवर्धनम्।
अकामत: स्त्री विधवा जपान् मोक्षमवाप्नुयात।।
अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मानि।
सर्वदु:खमयं विघ्नं नाशयेच्छापहारकम्।।

भगवान सदाशिव गुरुगीता में माँ पार्वती जी से कहते हैं कि गुरुगीता के विधिपूर्वक अनुष्ठान से आयु आरोग्य, ऐश्वर्य एवं पुत्र–पौत्रों की वृद्धि होती है। विधवा स्त्री निष्काम भाव से जप करें तो मोक्ष मिलती है। यदि सकाम भाव से पाठ करें तो अगले जन्म में अचल सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इसके पाठ से सभी दु:ख, भय, विघ्न एवं पापों का नाश होता है।

अपने श्री गुरुदेव भगवान अनन्त विभूषित श्री योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, योग महामेला जो अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री रामलाल जी महाराज जी के जन्म दिवस के रूप में श्री सिद्धगुफा सवांई धाम में, मनाते थे के पावन अवसर पर इस महामेला का शुभारम्भ स्वय श्री गुरुदेव भगवान श्री गुरुगीता के पाठ से प्रारम्भ किया करते थे। उनके जैसा सद्शिष्य इस पूरे ब्रह्माण्ड में दिखाई नहीं पड़ता जो कि इस गुरुतत्व के परम पद पर आसीन रहते हुए भी वे अपने आपको सदा छिपाये रहते थे और सदा साधारण व्यक्तियों की वेश–भूषा में रहते हुए साधारण लौकिक आचरण किया करते थे। अपनी अलौकिक विभूतियों और दिव्य शक्तियों के प्रदर्शन में सदैव संकोच बरतते थे। स्वयं सर्वसमर्थ रहते हुए भी जन–मानस में सदा यही कहते थे कि ''करण–कारण तो श्री प्रभुजी ही हैं, मैं तो कलछुल मात्र हूँ।'' यह उनके सद्शिष्य की परिभाषा को दर्शाता है।

योगयोगेश्वर श्री सद्गुरुदेव भगवान अपने वचनों द्वारा श्री गुरुभक्ति एवं अन्तरायों की निवृत्ति हेतु योगसूत्र *'तत्प्रतिषेधार्थ मेक तत्वाभ्यास:।'* की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि भगवान पतंजलिदेव जी के इस सूत्र का अभिप्राय यही है कि इन सभी अन्तरायों की निवृत्ति के लिए साधक को चाहिए कि *'एकतत्व'* अर्थात् अपने श्री सद्गुरुदेव जी का ध्यान करें। इसीलिए परात्पर जगतगुरु भगवान शंकर जी ने भी यही उपदेश माँ पार्वती जी को दिया –

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजा मूलम् गुरोः पदम्।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्ष मूलंमुरो कृपा।।

अर्थात् कल्याणमयी श्री गुरुदेव भगवान की भावमयी स्वरूप ध्यान का मूल है, उनके चरण कमल ही पूजा है। उनके द्वारा आदेशित शब्द ही मूलमंत्र हैं, उनकी ही कृपा मोक्ष का कारण है।

अन्ततः भगवान श्री सदाशिव ने यहाँ तक कह दिया कि –

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं।
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं।।
शिवशासनतः शिवशासनतः।
शिवशासनतः शिवशासनतः।।

अर्थात् भगवान शिव माँ पार्वती जी से कहते हैं, श्री गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है, श्री गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है, श्री गुरुदेव से अधिक कुछ भी नहीं है।

यह शिव का आदेश है, यह शिव का आदेश है यह शिव का आदेश है, यह शिव का आदेश है।

अतः इन्हीं शब्दों के साथ आनन्द कन्द अनन्त विभूषित योग योगेश्वर श्री सदगुरुदेव भगवान के चरणों में कोटिशः नमन।

●●●

विषयों का अनवरत चिन्तन एवं ध्यान विषयों में आसक्ति उत्पन्न करता है, आसक्ति से कामना जाग्रत होती है, कामना पूर्ति में व्यवधान होने से क्रोध प्रकट होता है, क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध नहीं रहता। मूढ़ता से विस्मृति जन्म लेती है अर्थात् हमें आत्मा के सत्य स्वरूप एवं स्वभाव की याद ही नहीं रहती। स्मृति नष्ट होते ही बुद्धि एवं विवेक का विनाश हो जाता है। विकारों तथा आवेगों से प्रभावित बुद्धि, आत्मा की एक शक्ति होते हुए भी, आत्मा के संकेतों को नकारती है तथा मन पर उसका अंकुश समाप्त हो जाता है। बल्कि बुद्धि पुर्णतः मन के अधीन हो जाती है।

सारे जन्म देख लेते प्रभु

– विजय शर्मा, सहारनपुर

तर्ज – तेरे नैना बड़े

योग शक्ति के दाता प्रभु रामलाल जी
प्रभु रामलाल जी, प्रभु चन्द्रमोहन जी
सारे जन्म देख लेते प्रभु जी एक नजर में

योग दीप प्रभु जी ने जगा के, जग में किया उजियारा
जगत पति ने जग में आके, योग अमृत सबको पिलाया
सिद्ध प्रभु जी बना देते एक नजर में
जो भी आ जाता एक बार इनकी शरण में
योग शक्ति ....

जिसको बुलाते वही दर पे आते, नहीं जानता आने वाला
झोली प्रभु भरते लाज बचाते, नहीं जान पाये लेने वाला
कृपा प्रभु जी की पा जायें एक नजर में
और कुछ भी ना चाहे वो इस जग से
योग शक्ति ....

धाम सवाई ऋषिकेश अलुपुर को, शक्ति का पीठ बनाया
सिद्धयोग का मार्ग दिखा के, फिर इनको योगी बनाया
सिद्ध देव सभी पाते कृपा इनके दर से
सारे भेद खुल जाते एक–एक करके
योग शक्ति ....

प्रभु रामलाल श्री चन्द्रमोहन जी की शान बड़ी है निराली
चरणों की सेवा को जिसने भी पाया, वो जीव बड़ा भाग्यशाली
मुक्त हो जाता वो जन्म–मरण चक्र से
फिर ना आता कभी जीव इस जग में
योग शक्ति ....

•••

आध्यात्मिक प्रगति के तीन मार्ग

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

(गतांक से आगे)

अर्थात् मायाकृत इन्द्रियों का यह स्वभाव है कि वह अपने–अपने विषयों में राग अथवा द्वेष रखती हैं यानि राग होने पर आकर्षित तथा द्वेष होने पर विकर्षित होती हैं इसलिए कर्मयोग की साधना करने वाले को उनके वशीभूत होकर विषयभोग में आसक्त नहीं होना चाहिए, क्योंकि आध्यात्मिक प्रगति में यह सबसे बड़ी बाधा है। जब इन्द्रियाँ विषयानन्द में आसक्त होती हैं तब मन तथा बुद्धि भी संसार में आसक्त हो जाते हैं। यही विषयानन्द की भ्रान्ति जीवात्मा को अज्ञान के अन्धकार में भटकने को विवश कर देती है इसी मन की भोगभावना के कारण जीवात्मा असमर्थता में शोकातुर होकर मायापाश में बँधी रहती है। यही कर्मबन्धन का हेतु है। कर्म से सन्यास लेने अथवा सांसारिक सम्बन्धों का त्याग कर देने से न तो अज्ञान नष्ट होता है और न अध्यात्मसिद्धि प्राप्त हो सकती है, क्योंकि इस बाह्य जगत के व्यवहार से मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का व्यापार नहीं रुकता और न चित्त विशुद्ध होता है, केवल मिथ्याचार की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। यह बुद्धिबोधात्मक जीव एक क्षण के लिए भी कर्म का अकर्ता अथवा निष्कर्म नहीं रहता, क्योंकि प्रतिक्षण बुद्धि के साथ तदाकारता के कारण बुद्धिसंवेदना से प्रभावित रहता है तथा प्रकृति के वशीभूत रहने से प्रारब्धनियोजित कर्मों को करने के लिए बाध्य है। अतः निःसंगभाव से प्रारब्धकर्मों को करते हुए कर्मफल को परमात्मा को अर्पण करके कर्मयोग की साधना ही अन्तःकरण की शुद्धि का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, क्योंकि इसमें मानसिक शान्ति के साथ प्रारब्ध का भी भुगतान हो जाता है और नवीन कर्माशय नहीं बनता। किसी भी मार्ग के साधक की सफलता चित्तशुद्धि पर ही निर्भर है, यह अनिवार्य शर्त है, क्योंकि शास्त्र का स्पष्ट कथन है कि –

अस्मिन् विशुद्धे विभवति एव आत्मा।
तैरेव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते।।
मनसो हि अमनीभावे अद्वैतभावं समुपद्यते।
कूटस्थो निर्मलोव्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।।
दृश्यते हि अर्थरूपेण पुरुषैः भ्रान्तदृष्टिभिः।
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगात् विशुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

अर्थात् संकल्प–विकल्प रहित विशुद्ध चित्त में यह आत्मतत्व स्वयं प्रकाशित हो जाता है। बुद्धि में वास करने वाली जीवात्मा प्राकृतिक गुणों से मुक्त होने पर परमात्मा का स्वरूप

धारण कर लेती है। चित्त जब चित्तवृत्तियों से पूर्णतः मुक्त होकर विशुद्ध हो जाता है तब द्वैतसृष्टि की भ्रान्ति समाप्त हो जाती है और सर्वव्यापी परमात्मस्वरूप का अद्वैतभाव प्रकाशित हो जाता है। यह आत्मा स्वभाव से निर्मल, सर्वव्यापी, सर्वाधिष्ठान तथा कूटस्थ चैतन्यस्वरूप है, किन्तु अशुद्ध अन्तःकरण वाले तथा भ्रान्तदृष्टि वाले अज्ञानी पुरुषों को इस जीवसृष्टि के रूप में दिखाई देती है। जिनकी बुद्धि वेदान्त के ज्ञानविज्ञान से तृप्त तथा सुनिश्चित भावसम्पन्न है तथा जिनका चित्त सन्यासयोग के द्वारा विशुद्ध हो चुका है, वह सभी शरीर त्यागने के उपरान्त ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और आत्मानन्दरूपी अमृतपान कर मायिक बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। यही परमात्मा का निश्चित किया हुआ विधान है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इस सत्य की पुष्टि की है कि –

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मणि अभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः।।
यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।
यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।
वीतरागभयक्रोधाः मन्मयाः मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसः पूताः मद्भावमागताः।।

अर्थात् परमात्मा के मायाविधान के अनुसार सभी कर्म प्रकृति के गुणों तथा गुणों से उत्पन्न प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा किये जाते हैं किन्तु बुद्धि के साथ तदाकारता के कारण अज्ञानवश जीवात्मा अपने को कर्ता समझती है। इसीलिए कर्मफल में आसक्त हो जाती है। अतः जीवात्मा भ्रान्तिज्ञान रूपी जलाश्रय में सूर्यप्रतिबिम्ब के समान है जिसमें जलाश्रय के दोष तथा विकार भी प्रतिलक्षित होते हैं। यह भ्रान्तिज्ञान अविद्यारूपी परमात्मा की मायाशक्ति है। जो मायिक विधान को समझते हुए कर्मबन्धन से मुक्ति चाहते हैं उन्हें बन्धन की मूलकारण कर्मफलासक्ति को अपने संकल्पों से निकालना होगा, क्योंकि जिसके चित्त में कर्म की सफलता तथा असफलता का द्वन्द्व नहीं है, कर्मफल की प्राप्ति तथा अप्राप्ति का द्वन्द्व नहीं है, कर्म से सम्बन्धित किसी भी अन्य प्राणी से राग तथा द्वेष की भावना नहीं है तथा नियत कर्म करते हुए उन्हें लोकहित के रूप में परमात्मा की सेवा में अर्पण कर देता है, वह कर्म करते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता अतः अकर्तापन की भावना के कारण कर्मबन्धन से मुक्त रहता है। इस प्रकार स्वयं अकर्तापन का अनुभव करते हुए कर्मफल में निरासक्त तथा निर्लिप्त भावनायुक्त जीव के

लिए मायापाश क्षीण होता जाता है, उसका कर्माशय कामनाओं के संकल्प-विकल्पों के अभाव में ज्ञानाग्नि से दग्ध होता जाता है। ऐसे साधक परमात्मा की अनन्या भक्ति का आश्रय पाकर काम क्रोध तथा भयादि सभी मायिक विकारों से मुक्त होकर अपने विशुद्ध चित्त में परमात्मा के ज्ञानस्वरूप का अनुभव कर परमात्मभाव को प्राप्त हो जाते है। बुद्धि के तदाकारता होने के कारण बुद्धिसंवेदना से उत्पन्न अहंकार ही कर्ता तथा भोक्ता का भाव जागृत करता है। यही अहंकार भ्रान्तिज्ञान का मुख्य कारण है, क्योंकि आत्मा तो स्वभाव से सदैव शुद्ध तथा निर्विकारी है, किन्तु जिस प्रकार पारदर्शी स्फटिक मणि में आधाररूप माध्यम के रंग तथा चित्र दिखाई देते है वस्तुत: नहीं हैं, उसी प्रकार इस अहंकार से शुद्ध आत्मा में भ्रान्तिज्ञान प्रकट हो जाता है जिसे जीवभाव कहा जाता है। योगदर्शन में इस सत्य की पुष्टि की गयी है कि-

''दृष्टा दृशिमात्रो शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्य:''

अर्थात् समस्त शरीरों में जो क्षेत्रज्ञ दृष्टा है वह परम शुद्ध तथा कूटस्थ एवं साक्षिमात्र है, किन्तु बुद्धिसम्वेदना के कारण बुद्धिप्रत्यय के रूप में दिखाई देता है। वेदशास्त्र का भी यही संदेश है कि -

तादृशी भवति विज्ञप्ति यादृशी खलु भावना।
क्षये तस्या: परं भावं स्वंमेव प्रकाशते।।

अर्थात् जैसा मन में संकल्प होता है, बुद्धि उसी को ग्रहण करती है और बुद्धिबोधात्मक आत्मा वैसा ही अनुभव करती है। जैसे ही आत्मज्ञान से यह भ्रान्तिज्ञान नष्ट हो जाता है, आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकाशित हो जाती है। यह आत्मा का शुद्ध स्वरूप ही परमात्मा का नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप है। अज्ञानांधकार में इस पर माया ने गुणविकारों के रूप में अनन्त जीवभाव विकल्पित किया हुआ है जैसे कि रज्जु का ज्ञान न होने से अंधकार में अनेकानेक सर्पभ्रान्ति: से भयादि भाव रज्जु पर स्वत: विकल्पित हो जाते हैं जो प्रकाश आ जाने पर रज्जु का ज्ञान होते ही स्वत: नष्ट हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुख से इस सत्य की पुष्टि की है कि -

अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्मा अयं अव्यय:।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।

क्षेत्रज्ञमपि च मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो: ज्ञानं यत्तद् मतं मम।।
उपदृष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वर:।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहे अस्मिन् पुरुष: पर:।।
यदा भूतप्रथग्भावं एकस्थमनुपश्यति।
तत: एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।

अर्थात् प्रत्येक प्राणी के शरीर में क्षेत्रज्ञ के रूप में जो चैतन्यात्मा है वह परमार्थतः अनादि तथा निर्गुण है अतः शरीर में व्याप्त रहते हुए भी स्वाभावतः नित्य, निष्क्रिय तथा निर्लिप्त है और परमात्मा का ही अव्यय स्वरूप है। वस्तुतः समस्त शरीरधारियों में क्षेत्रज्ञ स्वयं परमात्मा ही है और क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही परमात्मज्ञान है। यद्यपि सभी योनियों में चैतन्यात्मा बुद्धि के रूप में प्रकाशित होती है किन्तु मनुष्य की योनि में विश्लेषण की बुद्धि में विशेष शक्ति है। इसलिए मनुष्य योनि में साधक अपनी बुद्धिरूपी गुफा में गुप्त परमात्मा के चार स्वरूपों का अनुभव कर सकता है। प्रथम स्वरूप उपदृष्टा का है जिसमें परमात्मा अन्तःकरण में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक चित्तवृत्ति का साक्षित्व करता है। द्वितीय स्वरूप अनुमन्ता का है जिसमें परमात्मा कूटस्थ तथा निर्लिप्त होकर शक्तिदाता का कर्तव्य निभाता है। तृतीय स्वरूप भर्ता का है जिसमें परमात्मा समस्त सृष्टि का पालन–पोषण करता है और चतुर्थ स्वरूप भोक्ता का है जिसमें परमात्मा अपनी माया से स्वयं सम्मोहित होकर भ्रान्तिज्ञान से गुणों का उपभोग करता है। इसी भोक्ता स्वरूप से एक ही अद्वितीय परमात्मा अनन्त रूपों में अपनी योगमाया से सृष्टिलीला करता है। वेदवाणी इस सत्य की पुष्टि करती है कि –

प्राणादिभिः अनन्तैश्च भावैः एतैः विनिर्मिता।
माया ह्येषा अस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयम्।।

अर्थात् ब्रह्मरूप प्राण से आरंभ कर अनन्त जीवभावों से निर्मित परमात्मा की यह माया ही है जिसके द्वारा वह स्वयं भोक्तारूप में सम्मोहित हो गया है। जब साधक प्राणियों के अनन्त रूपों में एक ही परमात्मा को ज्ञानचक्षु से देखता है और यह अनुभव करता है कि सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार इसी एक परमात्मस्वरूप से हुआ है तब इस अनुभूति के उपरान्त साधक को परमात्मज्ञान हो जाता है। इस परमात्मज्ञान की प्राप्ति के लिए न्यूनतम दूरी का मार्ग भक्ति मार्ग है तदापि प्रत्येक मार्ग की सिद्धि अन्तःकरण की विशुद्धि पर अवश्य निर्भर है।

भक्तिमार्ग

यद्यपि परमात्मा का मानवी रूप मायिक है न कि सत्यस्वरूप। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि –

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावं अजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।

अर्थात् अज्ञानी मनुष्य ही परमात्मा को मानवी शरीर के आश्रित समझते हैं, क्योंकि ज्ञानचक्षु के अभाव में वह परमात्मा के अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान तथा योगेश्वर्य से सम्पन्न महेश्वर रूप को नहीं देख सकते। तथापि मायाधीश अपनी माया का आश्रय लेकर जब मानवशरीर में प्रकट होता है तब भी वह माया के रहस्यों का ज्ञाता, सर्वज्ञ तथा सम्पूर्ण योगेश्वर्य से सम्पन्न होता है। उसके योगयुक्त चित्त में सम्पूर्ण प्राणियों के चित्त प्रकाशित होते हैं, क्योंकि वही उपदृष्टा, अनुमन्ता तथा भर्ता भी है तथा सबकी भावनाओं का ज्ञाता होने से समस्त प्राणियों

का परम हितैषी भी है, इसीलिए –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या ते मयि तेषु चाप्यहम्।।

अर्थात् परमात्मा की शरण में जो जिस भावना से जाता है, सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ परमात्मा उस साधक को उसी भावना के अनुसार भजते हैं यानि सहायक होते हैं। जो भक्त उस परमात्मा का भजन भक्तिपूर्वक करते हैं उनका चित्त परमात्मा के चित्त के साथ एकीभाव होकर परमात्मा के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। इसीलिए यह उस सर्वशक्तिमान तथा सृष्टि के शासक एवं नियन्ता की प्रतिज्ञा है कि –

अपि चेद् सुदुराचारो भजति मामनन्यभाक्।
साधुरेव सः मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोऽपि सः।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वतशान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।
मन्मनः भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवं आत्मानं मत्परायणः।।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
एवं सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।
तेषामेवानुकम्पार्थ अहमज्ञानजं तमः।
नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वतः।।
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्तः उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।

अर्थात् परमात्मा की भक्ति से अध्यात्ममार्ग की कठिनाइयाँ सुगमता से कैसे दूर हो जाती हैं इसका उपाय भी परमात्मा स्वयं बताते हैं कि पिछले जन्मों में कोई जीव कितना भी दुराचारी तथा पापकर्मों में लिप्त रहा हो किन्तु इस जन्म में पूर्व संस्कारों के फलस्वरूप यदि उसके चित्त में अनन्या भक्ति का उदय हो गया और वह सांसारिक संकल्पों को त्याग कर पूर्ण वैराग्यसम्पन्न होकर परमात्मा की भक्ति में लग गया तो उसे महात्मा ही समझना चाहिए,

क्योंकि ऐसा भक्त शीघ्र धर्मात्मा बन जाता है और कामनाओं के अभाव में उसका अन्तःकरण शीघ्र विशुद्ध हो जाता है। विशुद्ध चित्त में मन की एकाग्रता के कारण परमात्मा की सगुण स्वरूप की दिव्य लीलायें ध्यानावस्था में प्रकट हो जाती हैं और भक्त का योगसमाधि में प्रवेश हो जाता है। यह परमात्मा की प्रतिज्ञा है कि भक्त के मार्ग की सभी बाधायें तथा चित्तवृत्तियों के अन्तराय स्वतः नष्ट होते जाते हैं। यह सगुण स्वरूप की महिमा है। अतः भगवान श्रीकृष्ण का विशिष्ट संदेश है कि ''मन को मेरे दिव्य स्वरूप में तथा मेरी दिव्य लोकलीलाओं में एकाग्र करते जाओ, अपने चित्त को मेरी प्रेमभक्ति से अतिरंजित करो, अपनी साधना का अंतिम लक्ष्य मेरे परमात्मभाव की प्राप्ति को बनाओ, नित्यप्रति मेरा चिन्तन करते हुए अपने मन तथा बुद्धि को मुझे अर्पण कर दो तो यह निश्चित है कि मायापाश से मुक्ति तथा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का तत्वज्ञान अवश्य प्राप्त होगा।'' जो भक्त अपने मन तथा बुद्धि को सांसारिक व्यवहार तथा व्यापार से हटाकर दिन–रात मेरे यानि परमात्मा के चिन्तन में लय कर देते हैं जिससे कि उन्हें अपने शरीर की भी सुध–बुध नहीं रहती, ऐसे भक्तों का योगक्षेम यानि शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति परमात्मा स्वयं करते हैं। इतना ही नहीं अपितु अपनी सभी चित्तवृत्तियों का निरोध कर जो भक्त अपने समाहित चित्त से निरोध समाधि में प्रवेश कर जाते हैं उनके चित्त में स्वयं प्रकाशित होकर परमात्मा उन्हें बुद्धियोग यानि सत्यनिष्ठा ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वार खोल देते हैं जिससे कि वह योगसिद्धि प्राप्त कर तत्वज्ञान पाकर ज्ञानचक्षु प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार ज्ञानमार्ग, साधनयोगमार्ग तथा भक्तिमार्ग तीनों मार्गों के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। जब भक्त अनन्या भक्ति से परमात्मा की उपासना करता है और परमात्मा के सर्वव्यापी स्वरूप को ही अपना लक्ष्य बना लेता है तब बाध्य सा होकर अतिशीघ्र परमात्मा स्वयं इस माया के भवसागर को पार करने के लिए नाव तथा नाविक बनकर प्रकट हो जाते हैं। यही भक्तिमार्ग की सर्वोत्कृष्ट महिमा है। ज्ञानमार्ग में इस भवसागर को पार करने के लिए स्वयं तैरना सीखना तथा तैर कर समुद्र को पार करने की शक्ति जुटाना असम्भव सा लक्ष्य है। योगसाधनमार्ग में गुरुदेव के निर्देशन से अष्टांगयोगरूपी नाव को तैयार कर अभ्यास के द्वारा स्वयं नाविक का दायित्व निभाना पड़ता है।

●●●

धन्यं शरीरं खलु तस्य देहिनो यस्य व्ययः स्यात्परसौख्यहेतवे।

उसी मनुष्य का शरीर धन्य है, जिसका उपयोग दूसरे की भलाई के लिए होता है।

स्वास्थ्य

योग-आसन

गोरक्षासन

जानवोरन्तरे पादावुत्तानाव्यक्त संस्थितौ।

गुल्फौ चासाद्यं हस्ताभ्या मुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः।।

कण्ठ संकोचनं कृत्वा नासाग्रम वलोकयेत्।

गोरक्षासन मित्याह योगिनां सिद्धि कारणम्।।

विधि – प्रथम सीधे बैठकर अपने दोनों पैरों के पादतल व एड़ियों को मिला लें व उसके बाद दोनों पैरों के पंजों को उलट कर सीवनी भाग में लिंग नाल के नीचे ले जाकर छुपा लें। तदनन्तर अपने हाथों को पीठ की ओर से लाकर व पटों के नीचे निकाल कर सामने दीखने वाली दोनों एड़ियों को पकड़ लें अर्थात ढाँप लें। इसी का नाम **गोरक्षासन** है।

समय – पूर्ववत् कुछ सैकन्डों से अभ्यास को शुरू करें व अपने शरीर के बलाबल को देखकर सैकन्डों के हिसाब से ही आगे बढ़ायें।

लाभ – मन की एकाग्रता, इन्द्रिय जय, कुण्डलिनी जागरण व वीर्य विकारों के लिए उत्तम है।

• • •

परमधर्म : योग

– अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

योगांगों पर एक दृष्टि :

निवृत्तिप्रधान धर्म है 'योग'। याज्ञवल्क्य ने आत्म–दर्शन के साधन योग को 'परम धर्म' कहा है। योग पौरुष–साध्य है। जीव के द्वारा अनुष्ठित होता है। उसकी भी एक विधि है। वह त्वं–पदार्थ प्रधान है। द्रष्टा का अपने स्वरूप में अवस्थान ही योग है। इसलिए निवृत्ति–प्रधान सांख्य धर्म के अन्तर्गत योग का भी सन्निवेश है। योग के आठ अंग हैं। अंगों के क्रम पर एक चलती–फिरती दृष्टि डाल लें।

पहला यम – यम के पाँच विभाग हैं – सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। शत्रु चार हैं और निवर्तक पाँच हैं। काम का निवर्तक ब्रह्मचर्य है। सबके अन्त में इसकी गणना इसलिए है कि पराधीन करने वाली वृत्तियों में यह सबसे प्रमुख है और पहले के चार गुणों के सहकार से ही इस पर विजय प्राप्त की जा सकती है। काम की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। वह बार–बार जीने मरने का स्वांग करता रहता है। आत्मा से अतिरिक्त देशान्तर, कालान्तर या वस्त्वन्तर रूप में विद्यमान या वर्तमान किसी वस्तु को चाहना काम है। न चाहने के रूप में भी काम ही रहता है। इसी से कामरूप को 'दुरासद' कहते हैं। उसको पकड़ पाना कठिन है। नित्यप्राप्त सत्ता के खो जाने की भ्रान्ति और अन्य की प्राप्ति की इच्छा काम का मूल है। इसकी निवृत्ति के लिए अद्वय तत्व का, ब्रह्म का, आत्मा रूप से ज्ञान अपेक्षित है। उसी ब्रह्म की प्राप्ति की साधना का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। यह स्त्री–पुरुष की परस्पर कामना से लेकर भ्रम–प्रमा–मूलक वस्तु की प्राप्ति की इच्छा तक पहुँचता है। ब्रह्म के लिए चर्या ही इस इच्छा को मिटा सकती है।

यमों द्वारा व्यावृत्य :

स्तेय, लोभ एक दुर्गुण है। यह दो रूप धारण करके आता है। जिस वस्तु पर अपना स्वत्व नहीं है उसको किसी प्रकार प्राप्त करना, इसका नाम 'स्तेय' है। दूसरा रूप है – जो वस्तुएँ अपने पास हैं, जिन पर अपना स्वत्व है उन्हें अधिक से अधिक संग्रह करके अपने साथ रखें, परिग्रह करें, इसका नाम 'परिग्रह' है। लोभ के इन दोनों तरुण–तनयों को वश में करने के लिए अस्तेय और अपरिग्रह नाम की दो वृत्तियाँ आवश्यक होती हैं, पहले अन्याय–पूर्वक उपार्जन का परित्याग, फिर आवश्यकता से अधिक संग्रह का परित्याग।

काम और लोभ की पूर्ति न होने पर मनुष्य के मन में क्रोध काउदय होता है। इच्छापूर्ति में बाधा डालने वाले के प्रति द्वेष भी होता है। द्वेष और क्रोध ज्वलनात्मक–वृत्ति के रूप में प्रचण्ड हो उठते हैं और हिंसा तथा विद्रोह के रूप में झण्डा उठाते हैं। यह क्रोध आग है और हिंसा उसकी ज्वाला। हिंसा के निरोध के लिए अहिंसा की आवश्यकता होती है। अहिंसा आत्म स्वरूप के

अनुरूप अन्तःकरण का एक गुण है। यह स्वरूप–स्थिति के अधिक अनुकूल पड़ता है। यह करुणा तथा क्षमा से भी अन्तरंग है; क्योंकि वे दोनों व्यवहार दशा में ही रहते हैं। अहिंसा शान्ति के रूप में व्यवहारशून्य दशा में भी विद्यमान रहती है।

यमों का प्रयोजन :

हमारी वाणी, कर्म–कलाप, काम–संकल्प, विचार–विवेक, असत्य से अनुविद्ध हो गये हैं। हमारी बुद्धि अधिकांश असत्य को ही सत्य के रूप में ग्रहण करती है और व्यवहार करती है। व्यवहार में माता के लिए सत्य अलग होता है, पत्नी के लिए अलग। यह सत्य की विभाजक–रेखा समाधि लगाये बिना टूट नहीं सकती और स्वरूप–सत्य का साक्षात्कार होने के लिए ऐसा आवश्यक है। ऐसी अवस्था में यदि केवल वाणी से ही सत्य–भाषण प्रारम्भ कर दिया जाये तो सत्य क्या है? यह जिज्ञासा जाग जायेगी। हम सत्य को जानेंगे तब सत्य को बोलेंगे। क्या बौद्धिक, मानस या ऐन्द्रियक सत्य ही सत्य है? आत्मसत्य सर्वथा गुप्त–लुप्त–सुप्त हो गया है? आत्मसत्रू क्या है? इस जिज्ञासा का बीज सत्य–भाषण में निहित है। आपकी दृष्टि से जो असत्य है वह न बोलें, न करें, न सोचें। आपके जीवन में एक दिन ऐसा आयेगा जब आप वास्तविक मौन का महत्व समझ जायेंगे। सत्य के साक्षात्कार के बिना बोलने में प्रवृत्ति ही नही होगी। सत्य की अभिव्यक्ति मौन में होती है।

कहना न होगा कि अष्टांगयोग का यह प्रथम अंग यम न केवल अपने लिए हितकारी है, प्रत्युत लोक व्यवहार में समाज–सेवा के लिए भी बहुत उपयोगी है। धर्म–कक्षा में साधारण धर्म का सार यही है। वेदान्त के साधन–चतुष्टय में शम–दम आदि रूप षट–सम्पत्ति भी इसी का परिपाक है। यह यम ही आदि में धर्म है और अन्त में अधिकार सम्पत्ति। यह जिज्ञासु के जीवन में इतना घुल–मिल जाता है कि तत्वज्ञान होने पर भी इसमें शिथिलता नहीं आती। जीवन्मुक्ति के विलक्षण सुख का आधार बनकर जीवन्मुक्त पुरुष के जीवन में उल्लसित होता रहता है। अन्तर्मुखता के साधनों में यही प्रथम है, इसके बिना किसी साधन की नींव मजबूत नहीं होती।

दूसरा अंग : नियम :

योग का दूसरा अंग है नियम। यह व्यक्तिगत जीवन के निर्माण का आवश्यक साधन है। एक वस्तु जब दूसरी वस्तु के साथ मिश्रित हो जाती है तब दोनों ही अपने शुद्ध रूप में नहीं रहते। मिट्टी और पानी मिलकर कीचड़ बन जाते हैं। शक्कर और जल का मिश्रण शर्बत हो जाता है। न शुद्ध जल रहा, न शुद्ध शक्कर। इसी प्रकार मनुष्य का चरित्र भी भिन्न–भिन्न वस्तुओं और व्यक्तियों के समागम से अपने शुद्ध रूप अर्थात् पवित्रता को खो बैठता है। आत्मा–अनात्मा का मिश्रण भी अशुद्धि ही है। मनुष्य के चरित्र में जब पवित्रता की रुचि उदय होती है तब वह बहिरंग एवं अन्तरंग दोनों ही प्रकार से पवित्र रहने का प्रयास करता है। शरीर पर मैल चढ़ने से धोने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मन में शत्रु–मित्र के प्रवेश से क्रोध–कामरूप मलिनता आ जाती है और उसके निवारण के लिए द्वेष की आग बुझानी पड़ती है और राग का रंग छुड़ाना

पड़ता है। ऐसा कोई भी रंग नहीं है जो शरीर के बहिर्देश या अन्तर्देश में प्रवेश कर जाय और उसको निकालना न पड़े, इसको **शौच** कहते हैं। यह अन्तरंग और बहिरंग के मल को प्रक्षालित करने की प्रक्रिया है। स्नान, सन्ध्या–वन्दनगत अघमर्षण से यह सम्पन्न होता है। शरीर में जो भोग का अभ्यास हो गया है वह गहराई में उतर गया है। भोग का अभ्यास एक रोग है, वह जितना–जितना बढ़ता है उतना–ही–उतना राग–संस्कार घनीभूत होता है, साथ ही भोग के कौशल बढ़ते हैं। भोगी पुरुष किसी–न–किसी को दुःख पहुँचा कर ही भोग करता है। अतएव भोगवृत्ति के संकोच का नियम लेना चाहिए। अपनी रुचि के अनुसार कुछ न हो, न मिले, कोई न बोले तो थोड़ा कष्ट सहकर भी अपने को संयत रखना चाहिए। संयमहीन मनुष्य पशु हो जाता है। चाहे जिस खेत में, चाहे जिसकी खेती पर मुँह मार दिया। जो स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन नहीं करता वह धर्मात्मा नहीं, ढोंगी है। योग–सम्बन्धी नियम में जो **तप** है वही वेदान्तियों की षट् सम्पत्ति में तितिक्षा बनकर प्रकट होती है। तप की माँ है धृति, बेटी है तितिक्षा। जिसके जीवन में तप नहीं है वह किसी मन्त्र की रक्षा या ज्ञान के धारण में समर्थ नहीं हो सकता।

शौच है – तन–मन में बाहर से लगे हुए को निकाल देना। तप है भीतर–ही भीतर तन मन को तपाकर कुन्दन बना देना। इसके बाद अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए तत्सम्बन्धी ज्ञान तथा तन्मयता प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय की आवश्यकता पड़ती है। धर्म में स्वाध्याय का अर्थ होता है सांगवेदों का अध्ययन। कम से कम अपनी शाखा के वेदों का अध्ययन उपासना में स्वाध्याय का अर्थ होता है इष्ट देवता के दर्शन के लिए जप। जप से प्रपंच की विस्मृति और बारम्बार लक्ष्य का स्फुरण होता है। स्वाध्याय बार–बार प्रपंच का विस्मरण कराता है और लक्ष्य का स्फुरण। इससे अभ्यास एवं वैराग्य की परिपुष्टि होती है। जप में स्वरूपतः अभ्यास है, दुहराना है और लक्ष्य से अतिरिक्त वृत्ति का उच्छेद है। स्वाध्याय से लक्ष्य की ओर अभिरुचि बढ़ती है।

साधक के लिए यह आवश्यक है कि अपने साधन–शरीर को परिपुष्ट रखने के लिए किसी बाह्य वस्तु के लिए व्याकुल न हो। निर्वाह–मात्र के लिए ही खान–पान, परिधान, शयन–स्थान अपेक्षित है, सुख लेने के लिए या ममता करने के लिए नहीं। यदि बाह्य वस्तुओं से ही अपने को गौरवशाली महामहिम माना जाय तो अन्तर में जो गरिमा सुषुप्त है वह जाग्रत् नहीं होती; क्योंकि उसकी ओर पीठ हो जाती है। आप असंग आत्मा होने से श्रेष्ठ हैं कि बहिरंग पद–प्रतिष्ठा, प्रशंसा, भोग–राग की प्राप्ति से? आपकी आत्मतुष्टि कहाँ है? **सन्तोष** के बिना साधना निष्प्राण हो जाती है, हाँ, वह सन्तोष लक्ष्य–प्राप्ति की साधना से नहीं, बाह्य वस्तुओं की लिप्सा से विरति के रूप में होना चाहिए।

यह जीव जब तक शिव से एक नहीं हो जाता, जब तक पूर्णता एवं अपूर्णता – प्रतीति वृष्टि, उल्लास या कल्पना मात्र नहीं हो जाती, तब तक अपी अल्पज्ञता और अल्पशक्तिता के बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता। जीव तो जीव ही है। साधन की सभी कक्षाओं में जीवत्व अनुगत

रहता है। जीवत्व के साथ निर्बलता जुड़ी हुई है। वह कभी उदास होता है, कभी निराश होता है, कभी थोड़ी देर के लिए उल्लास भी तरंगायित हो जाता है। जैसे शरीर स्वस्थ–अस्वस्थ होता रहता है, वैसे मन भी खिलता मुरझाता रहता है। जैसे शरीर के लिए चिकित्सक और चिकित्सा की आवश्यकता होती रहती है वैसे ही मन के लिए भी। मन के रोगों की चिकित्सा है – ईश्वर–प्रणिधान। ईश्वर शाश्वत है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्ति है, करुणावरुणालय है, परम गुरु है। जैसे साँस–के साथ हवा रहती है, आँख के साथ प्रकाश–ज्योति रहती है, वैसे ही प्रत्येक मन में जो सत्वांश है वह महासत्व शरीर परमेश्वर का ही रूप है। मन कण है तो ईश्वर मृत्तिका, मन बिन्दु है तो ईश्वर सिन्धु, मन घट है तो ईश्वर घटाकाश। अतएव 'ईश्वर में स्वतः समर्पण की विद्या से मन को देखना प्रणिधान है।' ईश्वर है प्रकृष्टनिधान। सत्वात्मक मन का खजाना है, कोश है। स्थिति–मति–गति–रति का कारण है – परमेश्वर। उसमें अपने मन को समर्पित करना, उसी के उद्देश्य से अपने समस्त, क्रिया–कलापों का अनुष्ठान, ईश्वर के प्रति आत्म–समर्पण 'प्रणिधान' अथवा शरणागतिभाव है। क्या हो रहा है, मिल रहा है, किया जा रहा है, बोला जा रहा है? इसकी ओर न देखकर सर्वत्र परम गुरु परमेश्वर का करुणामय, हितमय वरदहस्त कमल ही देखना चाहिए। उसकी उपस्थिति में, उसकी आँखों के सामने जो कुछ हो रहा है उसमें अनिष्ट की संभावना ही क्या है? इस सम्पूर्ण समर्पण से साधक लौकिक चिन्ताओं से मुक्त होकर तथा परमार्थ की प्राप्ति में आशावान होकर विश्वासपूर्वक दृढ़ता से अपने साधन में संलग्न हो जाता है। जहाँ भक्तिमार्ग में समर्पण को साधन की पूर्णता मानते हैं वहाँ योगमार्ग में समर्पण को योग–साधना में सहायक अंगीकार करते हैं।

यम–नियम साधन–मात्र की प्रथम भूमिका है। साधक–मार्ग पर चलने के लिए ये अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य पाथेय हैं। ये मार्ग में मिलने वाले प्रलोभनों एवं प्रतिबन्धों से रक्षा करते हैं। किसी को हानि पहुँचाये बिना एवं स्वयं हानि उठाये बिना आगे बढ़ने के लिए यही अन्तरंग एवं बहिरंग बलसम्बल हैं।

● ● ●

आवश्यक सूचना

मार्च अंक के साथ सिद्धयोग पत्रिका का शुल्क (वार्षिक) समाप्त हो रहा है। ग्राहकों को चाहिए कि मार्च तक वार्षिक शुल्क रु. 160/– मनीआर्डर डाक से भेज दें 'सम्पादक सिद्धयोग के नाम से।'

साथ ही कम से कम पाँच नये ग्राहक बनाकर आश्रम की सेवा में योगदान दें।

– आचार्य दासलाल
सम्पादक 'सिद्धयोग'

गंगा स्नान की महिमा, गंगा के समीप श्राद्ध, जप, दान तथा तर्पण का माहात्म्य और काशी की महिमा

(कल्याण से साभार)

श्री महादेव उवाच

गङ्गायां तु कृतस्नानो मुच्यते घोरपातकात्।
ब्रह्महा चैव गोघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः।।1।।

पतितोऽपि महादेव्याः प्रसादान्मुनिसत्तम।
विना मन्त्रादिभिश्चापि सद्भक्तिविधुरोऽपि च।।2।।

सकृत्स्नात्वा नरो ज्ञानादज्ञानादपि मुच्यते।
अनन्तं जायते पुण्यमक्षयं सप्तजन्मजम्।।3।।

वित्तं परमसौख्यं च जायते जान्हवीतटे।
विध्युक्तेन कृतस्नाने भक्त्या गङ्गाजले मुने।।4।।

निर्धूतपापः परमं पदं याति नरोत्तमः।।5।।

अन्यत्रापि स्मरन् गङ्गां यदि स्नानं समाचरेत्।
तत्रापि लभते पुण्यं गङ्गास्नानजतुल्यकम्।।6।।

प्रातः स्नानं तु यः कुर्यात्प्रत्यहं जान्हवीजले।
स पुण्यात्मा मुनिश्रेष्ठ साक्षाच्छम्भुरिवापरः।।7।।

तं दृष्टवा पापिनो पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः।
तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधानतः।
यः कुर्याज्जान्हवीतोये तस्य पुण्यं निबोध मे।।8।।

उद्धृत्योभयवंश्यानां पितृणां बहुकोटिशः।
स्वयं शंकरतामेति देहं त्यक्त्वा न संशयः॥ 9॥

महायज्ञसहस्त्राणि व्रतपूजाशतानि च।
नार्हन्ति जान्हवीस्नानकलामेकां महामुने ॥10॥

माघस्य शुक्लसप्तम्यां गङ्गायामरुणोदये।
स्नात्वा प्रमुच्यते प्राणी जन्मसंसारबन्धनात् ॥11॥

तस्मिन्नेव दिने सूर्यं पूजयन् जान्हवीतटे।
मुक्तो भवेन्महारोगाद्रोगी सत्यं न संशयः ॥12॥

पौर्णमास्यां नरः स्नात्वा विधिवज्जान्हवीजले।
निर्धूतपापः सायुज्यमन्ते प्राप्नोति शम्भुना ॥13॥

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तु स्नात्वा दृष्ट्वाव च जान्हवीम्।
महापातकसंघैस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥14॥

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां स्नात्वा विधिविधानतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ॥15॥

आरोग्यमतुलैश्वर्यं यदन्यच्च मनोगतम्।
सर्वं सम्पद्यते गङ्गाप्रसादान्मुनिपुङ्गव ॥16॥

अन्यच्चापि दिने यस्मिन्कस्मिन्नपि महामते।
स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ॥17॥

संतर्पयन्ति गङ्गायां पितॄन्ये तु समाहिताः।
तेषां तु पितरो यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥18॥

उत्सृज्य गङ्गासलिलं नान्यत्र तर्पयेत्पितृन्।
तर्पयेद्यदि मोहेन प्रायश्चित्ती भवेत्तदा।। 19।।

पितॄन्संतर्पयेद्यो हि गङ्गायां सुसमाहितः।
स एव प्रोच्यते पुत्रो नान्यः पुत्रः समुच्यते।। 20।।

गङ्गातीर्थं समासाद्य श्राद्धं कुर्याच्च तर्पणम्।
पितृणां तृप्तये मर्त्यस्त्वन्यथा नरकं व्रजेत्।। 21।।

गङ्गामुद्दिश्य गच्छन्तं वीक्ष्य तस्य पितामहाः।
श्राद्धं बुभुक्षवः सर्वे नृत्यन्ति प्रहसन्ति च।। 22।।

निराशाः पितरो यान्ति श्राद्धाभावे यतो मुने।
तस्मात्स निरयं याति यदि श्राद्धं न चाचरेत्।। 23।।

गङ्गासलिलपक्वान्नं देवानामपि दुर्लभम्।
तदन्नेन कृते श्राद्धे पितरो यान्ति निर्वृतिम्।। 24।।

संतुष्टाः पितरो यस्य तस्य जन्म च सार्थकम्।
विफलं जीवनं तस्य पितरो यस्य कोपिताः।। 25।।

रुष्टैः पितृगणैर्नृणां धर्मो नैव प्रजायते।
तस्मात्पितृन्सुसंतर्प्य धर्मकर्म समाचरेत् ।। 26।।

गङ्गायां यदि भाग्येन चन्द्रसूर्यग्रहं लभेत्।
तदा स्नात्वा पितृश्राद्धं कुर्याद्विधिविधानतः।
अक्षय्यं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां तृप्तिकारकम्।। 27।।

गङ्गाश्राद्धशतं श्रेष्ठं निर्वाणपददायकम्।
पुरश्चर्यां तदा कृत्वा सिद्धमन्त्रो भवेत्पुमान्।। 28।।

असाध्यं साधयेच्चापि शिवतुल्ये भवेत्स्वयम्।
पुरश्चरणकृच्छ्राद्धं कारयेदन्यतोऽपि वा।। 29।।

न श्राद्धविरहं कुर्यात्कदाचिदपि मोहितः।
अक्षय्यायां युगाख्यायां स्नात्वा वै जान्हवीजले।। 30।।

पितृन्संतर्प्य दानेन न पुनर्जन्मभाग्भवेत्।। 31।।

गङ्गायां तु पुरश्चर्यां कृत्व पापविवर्जितः।
सिद्धमन्त्रो महाज्ञानी भवेद्वै साधकोत्तमः।। 32।।

दानं ध्यानं जपो होमोऽभ्यर्चनं श्राद्धतर्पणम्।
बहुपुण्यकरं प्रोक्तं गङ्गायां मुनिसत्तम।। 33।।

गङ्गायां मोहतो नैव विण्मूत्रं विसृजेन्नरः।
विसृजन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश।। 34।।

असत्यभाषणं लोभं हित्वा च परनिन्दनम्।
परद्रोहादिकं पापं वर्जयेत्सुसमाहितः।। 35।।

यदि कुर्याच्च मोहेन तदा तत्पापशान्तये।
कृत्वा स्नानं नमस्कृत्य क्षेत्रादन्तर्हितो भवेत्।। 36।।

यस्तु गङ्गां महादेवीं प्रकृतिं नीररूपिणीम्।
नदीति मन्यते मोहात्स याति नरकान्बहून्।। 37।।

साक्षाद्ब्रह्ममयीं पूर्णा लोकानां त्राणहेतवे।
द्रवरूपेण निर्याता शक्तिराद्येति भावयेत्।।38।।

श्रीमहादेवजी बोले – मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्महत्या करने वाला, गोवध करने वाला, सुरापान करने वाला तथा गुरुपत्नीगामी महापापी भी गङ्गा में स्नान कर लेने पर महादेवी गङ्गा की कृपा से घोर पापों से मुक्त हो जाता है।।1½।। श्रेष्ठ भक्ति से हीन मनुष्य भी बिना मन्त्र आदि के ही, ज्ञानपूर्वक अथा अज्ञानपूर्वक मात्र एक बार गङ्गास्नान करके मुक्त हो जाता है।।2½।। मुने! गङ्गातट पर भक्तियुक्त होकर विधिपूर्वक गङ्गाजल में स्नान करने से मनुष्य को सात जन्मों में हो सकने वाला अनन्त तथा अक्षय पुण्य प्राप्त होता है और उसे विपुल धन तथा परम सुख की प्राप्ति होती है। वह नरश्रेष्ठ सभी पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त हो जाता है।।3–5।। यदि मनुष्य गङ्गा का स्मरण करते हुए अन्यत्र कहीं भी स्नान करता है तो वहाँ भी उसे गङ्गास्नान से होने वाले पुण्य के समान पुण्य प्राप्त होता है।।6।।

मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल गङ्गा के जल में स्नान करता है, उस पुण्यात्मा को साक्षात् दूसरे शिव के समान ही समझना चाहिए। उसके दर्शन से पापी लोग पाप से मुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है।।7½।।जो मनुष्य तुला, मकर और मेष की संक्रान्तियों में गङ्गाजल में प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान कता है, उससे पुण्य के विषय में मुझसे सुनिये। वह मनुष्य उभयकुल (मातृ–पितृकुल) के करोड़ों पितरों का उद्धार करके अन्त में अपना शरीर त्याग कर शिवत्व को प्राप्त हो जाता है; इसमें संदेह नहीं है।।8–9।।

महामुने! हजारों महायज्ञ तथा सैकड़ों व्रत और पूजा आदि गङ्गास्नान की एक कला के भी बराबर नहीं है।।10।। माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि (अचला सप्तमी) को अरुणोदयकाल में गङ्गास्नान करने पर मनुष्य सांसारिक जन्म–मरण के बन्धन से छूट जाता है। उस दिन गङ्गा के तट पर सूर्य की पूजा करने से रोगी महारोग से मुक्त हो जाता है, यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है।।11–12।। पूर्णिमातिथि को गङ्गा के जल में विधिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्त में वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है।।13।। कार्तिक मास की पूर्णिमा को गङ्गा का दर्शन करने तथा उनमें स्नान करने से मनुष्य महापातकों के समूह से मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है।। 14।। चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को विधि–विधानपूर्वक गङ्गा में स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! आरोग्य, अतुलनीय ऐश्वर्य तथा अन्य जो भी मनोवाञ्छित रहता है – वह सब गङ्गा की कृपा से प्राप्त हो जाता है।।15–16।। महामते! इसके अतिरिक्त किसी भी दिन गङ्गा स्नान करने से मुनष्य सभी पापों से छूट जाता है और परम पद प्राप्त करता है।।17।।

जो लोग एकाग्रचित्त होकर गङ्गा में पितरों का तर्पण करते हैं, उनके पितर निर्विकार ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं।।18।। गङ्गाजल उपलब्ध रहने पर उसे छोड़कर अन्य जल से पितरों का तर्पण नहीं करना चाहिए। यदि कोई अज्ञानवश ऐसा करता है तो वह प्रायश्चित्त का भागी

होता है।।19।।जो समाहित होकर गङ्गा में पितरों का तर्पण करता है, उसे ही पुत्र कहा जाता है, अन्य को पुत्र नहीं कहा जाता।।20।।

मनुष्य को अपने पितरों की तृप्ति के लिए गङ्गातीर्थ में जाकर श्राद्ध तथा तर्पण करना चाहिए, अन्यथा वह नरकगामी होता है।। 21।। गङ्गा को उद्देश्य करके जाते हुए मनुष्य को देखकर श्राद्धभोग की इच्छा रखने वाले उसके पितर प्रसन्न होकर हँसने तथा नाचने लगते है।। 22।। मुने! श्राद्ध न करने के कारण पितर निराश होकर लौट जाते हैं। अतः यदि मनुष्य अपने पितरों का श्राद्ध नहीं करता है तो वह नरक में पड़ता है।। 23।। गङ्गा के जल में पकाया हुआ अन्न देवताओं को भी दुर्लभ है। उस अन्न से श्राद्ध किये जाने पर पितरों को संतृप्ति होती है।। 24।। जिसके पितर सन्तुष्ट रहते हैं, उसका जन्म सार्थक है और जिसके पितर कुपित रहते हैं उसका जीवन निरर्थक है।।25।।पितरों के रुष्ट रहने पर मनुष्यों को धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। अतः पितरों को भलीभाँति तृप्त करके ही धार्मिक कृत्य करना चाहिए।।26।।

चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण के अवसर पर यदि भाग्य से गङ्गा का सांनिध्य प्राप्त होता है तो उस समय गङ्गा में स्नान करके विधि–विधानपूर्वक पितृश्राद्ध करना चाहिए। वह श्रेष्ठ श्राद्ध अक्षय, पितरों को तृप्त करने वाला, सौ गङ्गा श्राद्धों के समान और मोक्षपद प्रदान करने वाला होता है।। 27 ½।। उस समय पुरश्चरण करने से मनुष्य मन्त्रों को सिद्ध कर लेता है। वह असाध्य कार्यों को भी सम्पन्न कर लेता है और स्वयं शिव–तुल्य हो जाता है। पुरश्चरण कर रहे मनुष्य को किसी दूसरे अधिकारी पुरुष से अपने पितरों का श्राद्ध करा लेना चाहिए। किंतु अज्ञानवश उसे अपने पितरों को कभी श्राद्ध से वंचित नहीं करना चाहिए।।28–29 ½।। अक्षय कही जाने वाली तथा युगादि तिथियों पर गङ्गा के जल में स्नान करके श्राद्ध तथा दान आदि से पितरों को संतृप्त करने से मनुष्य पुनर्जन्म का भागी नहीं होता।।30–31।। उत्तम साधक गङ्गा में पुरश्चरण करके पाप से रहित होकर मन्त्रसिद्ध तथा महाज्ञानी हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! गङ्गा के सांनिध्य में किये गये दान, ध्यान, जप, होम, पूजन तथा श्राद्ध–तर्पण आदि महान् पुण्यकारक कहे गये हैं।।32–33।।

भूलकर भी मनुष्य को गङ्गा में मल–मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। गङ्गा में मल–मूत्र का विसर्जन करने वाला व्यक्ति चौदह इन्द्रों के भोगकाल तक (एक कल्प पर्यन्त) नरक में वास करता है।। 34।। पुण्यात्मा व्यक्ति को चाहिए कि असत्य भाषण तथा लोभ का त्याग करके परनिन्दा और परद्रोह आदि पापों से रहित हो जाय। यदि भूल से ऐसा कर देता है, तब उस पाप की शान्ति के लिए उसे गङ्गास्नान करके तथा भगवती गङ्गा को प्रणाम करके उस क्षेत्र से अन्यत्र हट जाना चाहिए।। 35–36।। जो पुरुष जलरूपिणी, पूर्णा, परा प्रकृति तथा साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती गङ्गा को अज्ञानवश नदी– ऐसा मानता है, वह अनेक नरकों में जाता है। आदिशक्ति ही प्राणियों की रक्षा के लिए द्रवरूप में निकली हुई हैं – ऐसी भावना करनी चाहिए।। 37–38।।

● ● ●

(शेष अगले अंक में)

तेरे दर का भिखारी

– जगदीश राए बंसल ''अधम'', नई दिल्ली, मो. : 9212434003

गुरुदेव दया करके, मुझ को शरण देना।
तेरे दर का भिखारी हूँ, चरणों में जगह देना।।

यह चंचल मन मेरा, एक जगह नहीं टिकता
मैं जी जी कर मरता, और मर मर कर जीता
मैं खाली हूँ इस दर का, मेरी झोली भर देना।
तेरे दर का ....(1)

जो दर्शन आपका पाते हैं, दिल आपको ही दे जाते हैं
जो चरणों में शीश नवाते हैं, अड़सठ तीर्थ फल पाते हैं
मैं रंग में रंग जाऊं तेरे, मेरे भाग जगा देना।
तेरे दर का ....(2)

तुमने दुनियाँ के कष्ट मिटाए, सबको सुख पहुंचाए
यहाँ रोते रोते जो आए, सब हँसते हँसते लौटाए
भण्डार भरे हैं दया के, मुझे भण्डारी बना देना।
तेरे दर का ....(3)

मैं बच जाऊँ इस जग के, सारे दुख दर्दों से
हे दयालु मुझ को बचा लो, इन झूठे जंजालों से
''अधम'' गुणगान करे तेरे, इक ऐसा वर देना।
तेरे दर का ....(4)

• • •

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।। ।। ॐ श्री सद्गुरुपरब्रह्मणे नमः।।

卐

श्री रामनवमी महोत्सव व श्री प्रभुजी की पावन जयन्ती

सभी गुरु भाई बहिनों को यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि आनन्दकन्द श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस योग महामेला के रूप में दिनांक 6, 7 व 8 अप्रैल, 2014 तदनुसार रविवार, सोमवार व मंगलवार को बड़े ही धूम-धाम से श्री सिद्धगुफा सवांई धाम में मनाया जा रहा है। चैत्र नवरात्रारम्भ 31 मार्च, 2014 से प्रारम्भ हो रहा है।

सभी श्रद्धालु गुरुभाई बहिनों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में सवांई धाम में आकर सत्संग लाभ लें तथा पुण्य के भागी बनें। कृपया इसे ही आमन्त्रण पत्र समझें।

जय गुरुदेव की।

निवेदक :
सभी आश्रमवासी साधकगण
श्री सिद्धगुफा सवांई, आगरा

याद रखो

● जिसके पास जो कुछ होता है, वह न चाहने पर जगत् को सहज ही वही देता है, गुलाब सुगन्ध का और मल दुर्गन्ध का स्वभाव से ही वितरण करेगा और जिन वस्तुओं का जितनी दूर तक अधिक विस्तार होगा, उन्हीं का अन्य लोगों में भी-उतनी ही दूर तक प्रभाव होगा, लोग वैसे ही बनने लगेंगे। अतएव जिनके हृदय में सद्भावों का भण्डार है तथा शुभ संस्कारों का निवेश है, उनके द्वारा सदा सत्कर्म होते हैं, उन्हीं का अन्य लोगों में भी प्रचार, प्रसार तथा विस्तार होता है- उनसे फिर दूसरों में। इस प्रकार अपना तथा जगत् के लोगों का सहज ही कल्याण होता है। इसी प्रकार इसके विपरीत दुर्भावों तथा दुष्क्रियाओं से अपना तथा जगत् के अन्य लोगों का निश्चित अहित होता है।

● जो पुरुष दूसरों के हित-सुख का सम्पादन अपना कर्तव्य समझेगा; स्वाभाविक ही उसके अन्तःकरण में त्याग, दया, सहानुभूति, सेवा, संयम तथा शुद्ध सदाचार के भावों का उदय तथा संवर्धन होता रहेगा और जितना-जितना वह इन शुद्ध संस्कारित भावों के अनुसार क्रिया करने में तत्पर होगा, उतना-उतना ही उसके इन पवित्र भावों में अधिकाधिक उत्कर्ष, शुद्धि, शक्ति तथा उल्लासमयी धारा का प्रवाह तीव्र रूप से बहने लगेगा।

● ● ●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11 Februar

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो ज्ञानं भारः क्रियां बिना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रियाँ नहीं हैं, उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री मनमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्र...
राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण के...
प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक ...